ISSN 2456-4818

जुलाई-दिसंबर -2019

वर्ष-51 अंक -3-4

मूल्य
₹ 20

वैज्ञानिक

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद की पत्रिका

भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र के सौजन्य से प्रकाशित

विक्रम साराभाई जन्म शताब्दी वर्ष

डॉ विक्रम साराभाई का जीवन परिचय

विजय भार्गव,
नवी मुंबई

डॉ. विक्रम साराभाई को देश के महान वैज्ञानिक और अंतरिक्ष कार्यक्रमों के जनक के तौर पर जाना जाता है। उन्होंने ही भारत रत्न से सम्मानित पूर्व राष्ट्रपति व प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ एपीजे अब्दुल कलाम को मिसाइल मैन बनाया था. सन् 2019 उनकी 100वीं जयंती वर्ष है. डॉ विक्रम साराभाई ने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से अपनी पढ़ाई पूरी करने के बाद अहमदाबाद में ही फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी (पीआरएल) की स्थापना की थी. उस समय उनकी उम्र महज 28 साल थी. पीआरएल की सफल स्थापना के बाद डॉ साराभाई ने कई संस्थानों की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया.

डॉ. साराभाई का कहना था कि यदि हम राष्ट्र के निर्माण में अर्थपूर्ण योगदान देते है तो एडवांस तकनीक का विकास कर हम समाज की परेशानियों का समाधान भी निकाल सकते हैं. उनका पूरा नाम डॉ विक्रम अंबालाल साराभाई था.

उनका जन्म 12 अगस्त 1919 को गुजरात के अहमदाबाद में हुआ था.तकनीकी समाधानों के अलावा इनका और इनके परिवार का आजादी की लड़ाई में भी भरपूर योगदान रहा.

डॉ. साराभाई ने माता-पिता की प्रेरणा से बचपन में ही यह निश्चय कर लिया कि उन्हें जीवन विज्ञान के माध्यम से देश और मानवता की सेवा में लगाना है. स्नातक की शिक्षा के लिए वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय चले गए और 1939 में 'नेशनल साइन्स ऑफ ट्रिपोस' की उपाधि ली. द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ने पर वे भारत लौट आए और बंगलुरु में प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ.चंद्रशेखर वेंकटरामन के निर्देशन में प्रकाश संबंधी शोध किया. इसकी चर्चा सब ओर होने पर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने उन्हें डीएससी की उपाधि से सम्मानित किया. अब उनके शोध पत्र विश्वविख्यात शोध पत्रिकाओं में छपने लगे.

भारत के आजाद होने के बाद उन्होंने 1947 में फिजिकल रिसर्च लैबरेटरी (पीआरएल) की स्थापना की. पीआरएल की शुरुआत उनके घर से हुई. शाहीबाग अहमदाबाद स्थित उनके बंगले के एक कमरे को ऑफिस में बदला गया जहां भारत के स्पेस प्रोग्राम पर काम शुरू हुआ. 1952 में उनके संरक्षक डॉ.सीवी रमन ने पीआरएल के नए कैंपस की बुनियाद रखी. उनकी कोशिशों का ही नतीजा रहा कि हमारे देश के पास आज इसरो (ISRO) जैसी विश्व स्तरीय संस्था है.

उन्होंने कर्णावती (अहमदाबाद) के डाइकेनाल और त्रिवेन्द्रम स्थित अनुसन्धान केन्द्रों में काम किया. उनका विवाह प्रख्यात नृत्यांगना मृणालिनी देवी से हुआ. उनके घर के लोग गांधीजी के पक्के अनुयायी थे. वे उनकी शादी में भी शामिल नहीं हो पाए थे, क्योंकि उस समय वे सभी गांधीजी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आंदोलन में व्यस्त थे. उनकी बहन मृदुला साराभाई ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाई. डॉ. साराभाई की विशेष रुचि अंतरिक्ष कार्यक्रमों में थी.

वे चाहते थे कि भारत भी अपने उपग्रह अंतरिक्ष में भेज सके. इसके लिए उन्होंने त्रिवेन्द्रम के पास थुम्बा और श्री हरिकोटा में राकेट प्रक्षेपण केन्द्र स्थापित किए. होमी भाभा की मदद से तिरुवनंतपुरम में देश का पहला रॉकेट लॉन्चिंग स्टेशन बनाया गया.

डॉ. साराभाई ने न सिर्फ डॉ.अब्दुल कलाम का इंटरव्यू लिया, बल्कि उनके करियर के शुरुआती चरण में उनकी प्रतिभाओं को निखारने में अहम भूमिका निभाई. डॉ.कलाम ने खुद कहा था कि वह तो उस फील्ड में नवागंतुक थे. डॉ.साराभाई ने ही उनमें खूब दिलचस्पी ली और उनकी प्रतिभा को निखारा. डॉ. अब्दुल कलाम को मिसाइल मैन बनाने वाले डॉ साराभाई ही थे.

डॉ. कलाम ने कहा था, 'डॉ. विक्रम साराभाई ने मुझे इसलिए नहीं चुना था क्योंकि मैं काफी योग्य था बल्कि मैं काफी मेहनती था. उन्होंने मुझे आगे बढ़ने के लिए पूरी जिम्मेदारी दी. उन्होंने न सिर्फ उस समय मुझे चुना जब मैं योग्यता के मामले में काफी नीचे था, बल्कि आगे बढ़ने और सफल होने में भी पूरी मदद की. अगर मैं नाकाम होता तो वह मेरे साथ खड़े होते.'

डॉ. साराभाई भारत के ग्राम्य जीवन को विकसित देखना चाहते थे. 'नेहरू विकास संस्थान' के माध्यम से उन्होंने गुजरात की उन्नति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई. वह देश-विदेश की अनेक विज्ञान और शोध सम्बन्धी संस्थाओं के अध्यक्ष और सदस्य थे. अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने के बाद भी वे गुजरात विश्वविद्यालय में भौतिकी के शोध छात्रों को सदा सहयोग करते रहे. उन्होंने अहमदाबाद में IIM और फिजिक्स रिसर्च लेबोरेट्री बनाने में मदद की. उन्हें भारत सरकार ने 1966 में पद्मभूषण और 1972 में पद्मविभूषण से नवाजा.

डॉ.साराभाई 20 दिसंबर, 1971 को अपने साथियों के साथ थुम्बा गये थे. वहाँ से एक राकेट का प्रक्षेपण होना था. दिन भर वहाँ की तैयारियां देखकर वे अपने होटल में लौट आए पर उसी रात में अचानक उनका देहांत हो गया. हालांकि 52 साल की उम्र में उनके निधन के बाद देश के पहले सेटेलाइट आर्यभट्ट को लॉन्च किया गया, लेकिन उसकी बुनियाद डॉ. साराभाई तैयार कर गए थे.

उन्होंने पहले ही भारत के पहले सेटेलाइट के निर्माण के मकसद से मशीनीकरण शुरू कर दिया था. कॉस्मिक किरणों और ऊपरी वायुमंडल की विशेषताओं से संबंधित उनका शोध कार्य आज भी अहमियत रखता है. उनकी प्रेरणा से देश के पहले सेटेलाइट आर्यभट्ट को 19 अप्रैल, 1975 को लॉन्च किया गया.

वैज्ञानिक

वर्ष - 51 अंक - 3-4

जुलाई-दिसंबर 2019

♦ मुख्य सम्पादक ♦

श्री मनीष कुमार

♦ सम्पादन मंडल ♦

श्री राजेश कुमार मिश्र
श्री विपुल सेन
डॉ. संजय पाठक
श्री अनिल कुमार
श्री प्रवीण दुबे

♦ मुख्य व्यवस्थापक ♦

श्री दीनानाथ सिंह

♦ व्यवस्थापन मंडल ♦

श्री संजय गोस्वामी
श्री कपिलदेव प्रसाद अम्बष्ठ
श्री राजीव गुप्ता
श्री योगेंद्र सिंह

सदस्यता शुल्क आजीवन

व्यक्तिगत : रु.1000
संस्थागत : रु.2000

भुगतान हेतु स्टेट बैंक आफ इंडिया खाता संख्या : 34185199589 IFS code : SBIN0001268
कृते : हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद'
Pay to : Hindi Vigyan Sahitya Parishad
कृपया सदस्यता हेतु ई-भुगतान की रसीद अथवा चेक भुगतान अपने पूरे पते के साथ व्यवस्थापक के पते पर भेजें.
अकाउंट नंबर- SBI 34185199589

कार्यालय

'वैज्ञानिक', हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, सेंट्रल कांप्लेक्स,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई-400 085
Email : sampadakvaigyanik@gmail.com
cc: hvsp@barc.gov.in

सभी पद अवैतनिक हैं

'वैज्ञानिक' में छपे लेखों का दायित्व लेखकों का है.

मूल्य : 20 रुपये

अनुक्रमणिका

1.सम्पादकीय - 5

लेख

1) वामन कदमों की लंबी छलाँग
- डॉ.रश्मि वार्ष्णेय - 7

2) 19वीं सदी की हिंदी संस्थाओं का विज्ञान ....
- डॉ.राकेश कुमार दूबे - 9

3) बकरी का दूध गुणवत्ता से भरपूर
- चेतना गंगवार , अनुज कुमार सिंह सिकरवार,
श्री प्रकाश सिंह एवं सुरेश दिनकर खर्चे - 13

4) ब्रह्माण्डीय-किरण अनुसंधान में होमी भाभा का योगदान
- कृष्ण कुमार सिंह एवं संदीप गोदियाल - 17

5) प्रतिकण की अवधारणा; प्रतिपदार्थ एवं अनुप्रयोग
- दीपेन्द्र सिंह रावत, एच.सी.चन्दोला - 21

6) वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता
- राधेश्याम चौबे - 25

7) अदृष्य सूक्ष्मजीवों की अद्भुत दुनिया
- मनीष श्रीवास्तव - 30

8) पर्वतीय कृषि और कृषि यंत्रों की ज्यामितीय वैज्ञानिकता
- कु. प्रतीक्षा जोशी - 33

9) विकिरण एवं परमाणु ईंधन संविरचन
- नरेंद्र कुमार करनानी - 38

10) चार्ल्स डार्विन और अल्फ्रेड वाल्लेस....
- सुप्रीत सैनी - 44

11) एलआईजीओ (लीगो)- इंटरफेरोमीटर.....
- प्रतिभा गुप्ता - 48

12) जैविक खादों का उपयोग अत्यंत जरूरी
- डॉ सरोज शुक्ला - 55

13) डायलिसिस के मरीजों के लिए तैयार हो रहा है कृत्रिम गुर्दे
- डॉ.दया शंकर त्रिपाठी - 56

14) हमारा पर्यावरण - 58
- कल्पना सागर

15) माइग्रेनः अत्यंत कष्टदायक सरदर्द
- मंजुलिका लक्ष्मी -60

16) डामर के स्रोत और उपयोग
- शिक्षा स्वरूपा कर, केवल कृष्ण गोला - 65

17) कोशिकाओं के आत्मघात से रोग का बचाव
- अमिताभ प्रेमचन्द्र - 71

18) विज्ञान वर्ग पहेली - 14 - 73

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

कार्यालय : हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, सूचना प्रभाग
सेंट्रल कांप्लेक्स, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई 400085
दूरभाष : 022-25591413 ई मेल : dnsingh@barc.gov.in

संरक्षक
डॉ ए.के.मोहंती
निदेशक भा.प.अ.के.

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष
श्री कवींद्र पाठक

उपाध्यक्ष
श्री राजेश कुमार मिश्र
सचिव
श्री दीनानाथ सिंह
सहसचिव
श्री प्रदीप कुमार रामटेके

कोषाध्यक्ष
श्री एम.सी.गोयल
संयुक्त कोषाध्यक्ष
श्री एन.सी.शर्मा
मुख्य संपादक
श्री मनीष कुमार

सदस्य
श्री विपुल सेन
श्री संजय गोस्वामी
श्री राजेश कुमार
श्री राजेश मिश्रा
श्री अनिल अहिरवार
श्री आर पी. कुशवाहा
श्री प्रवीण दुबे
डॉ.कुलवंत सिंह

पदेन सदस्य
श्री नरसिंह राम
संयुक्त निदेशक (राजभाषा)

डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2020

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा आयोजित डॉ. होमी भाभा हिंदी विज्ञान लेख प्रतियोगिता 2020 (अखिल भारतीय आधारित) हेतु प्रविष्टियां आमंत्रित हैं. लेख में किसी भी वैज्ञानिक विषय पर मौलिक एवं आधुनिक जानकारी होनी चाहिये. लेख का अप्रकाशित होना अनिवार्य है. मूल्यांकन में मौलिक जानकारी के साथ-साथ रेखाचित्रों, फोटोग्राफ, तालिकाओं इत्यादि को समुचित महत्व दिया जाता है. चित्रों को अलग से सफेद कागज/ ट्रेसिंग पेपर पर काले पेन से बनायें. फोटोग्राफ ब्लैक एंड व्हाइट हो तो उचित रहेगा. इन्हें लेख के अंत में संलग्न कर दें. नीचे दिये गये पते पर कृपया टंकित अथवा स्पष्ट हस्तलिखित प्रति (लगभग 3000-4000 शब्द) भेजें. लेख पी.डी.एफ. अथवा वर्ड फाईल (यूनीकोड या कृति देव 10) में ईमेल द्वारा भी निम्नलिखित पते पर भेजे जा सकते हैं.

अंतिम तिथि : 31 मई, 2020

पुरस्कार

प्रथम	- रु 8,000/-
द्वितीय	- रु 6,000/-
तृतीय	- रु 4,000/-
प्रोत्साहन पुरस्कार (4)	- रु 3,000/- प्रत्येक

(जिसमें अहिंदी वर्ग के लिये एक)

लेख भेजने का पता:

श्री संजय गोस्वामी
कार्यकारिणी सदस्य, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद
एनआरबी,भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई-400094
ईमेल : goswamis@barc.gov.in
दूरभाष : 022-25597977

श्री दीनानाथ सिंह,
संयोजक- लेख प्रतियोगिता
सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
एनआरपीएसईडी, एनआरबी, कमरा नं 206,
ओटीएफ, पीपी परिसर,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुंबई - 400085
ईमेल: dnsingh@barc.gov.in

सम्पादकीय

प्रिय मित्रो,

वर्ष 2019 के इस अंतिम अंक को संयुक्त अंक के रुप में प्रकाशित किया जा रहा है. वर्ष 2019 विक्रम अंबालाल साराभाई (12.08.1919 - 30.12.1971) का जन्मशताब्दी वर्ष है, इसलिये इस अंक का आरंभ डॉ.रश्मि वार्ष्णेय की कविता 'वामन कदमों की लंबी छलाँग' से की जा रही है. प्रस्तुत कविता के आरंभ में कवयित्री ने अंतरिक्ष और परमाणु ऊर्जा दोनों मंचों को साझा करने वाले डॉ. साराभाई का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया है. डॉ.साराभाई, जो कि परमाणु ऊर्जा विभाग के दूसरे अध्यक्ष भी रहे हैं, के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु इस अंक के आवरण पृष्ठ को भी उन्हीं के प्रति समर्पित किया गया है.

30 अक्टूवर को भारत के नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम के जनक एवं परमाणु ऊर्जा विभाग के प्रथम अध्यक्ष डॉ. होमी जहांगीर भाभा का जन्म दिवस भी था, इसलिए कृष्ण कुमार सिंह एवं संदीप गोदियाल द्वारा प्रस्तुत लेख 'ब्रह्मांडीय किरण अनुसंधान में होमी भाभा का योगदान' को उनके प्रति समर्पित किया गया है.

डॉ राकेश दूबे की लेख '19 वीं सदी की हिंदी संस्थाओं का विज्ञान के लोकप्रियता में योगदान' इस अंक में शामिल करना हमारे लिये गौरव की बात है. इस लेख में राकेश जी ने आधुनिक भारतीय इतिहास को दशा और दिशा देने में विज्ञान की भूमिका को अत्यंत ही सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है. आधुनिक भारत में हिंदी में विज्ञान विषयक ग्रंथ और उनके प्रकाशन का सन् 1817 से इतना सिलसिलेवार वर्णन अपने आप में सरहनीय है.

बकरी के दूध की गुणवत्ता पर चेतना, अनुज, प्रकाश और सुरेश जी का लेख एवं मनीष श्रीवास्तव द्वारा अदृष्य सूक्ष्मजीवों की अदभुत दुनिया पर प्रस्तुत लेख बहुत ही ज्ञानवर्धक है. माईग्रैन, कोशिकाओं के आत्मघात, कृत्रिम गुर्दे आदि के बारे में दी गई जानकारियां हमें चिकित्सा जगत में हो रहे नये आविष्कारों के बारे में भी बताता है. साथ ही प्रतिकण की अवधारणा और वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता जैसे लेखों के माध्यम से लेखकों ने हमें विज्ञान और तकनीकी में हो रहे विकास से भी परिचित कराया है.

जैसा कि हम बार बार कहते रहते हैं कि लेखों की मौलिकता एवं भाषा की सुगमता ही लेख को उत्कृष्ट बनाती है. पत्रिका की गुणवत्ता काफी हद तक प्राप्त लेखों पर निर्भर करता है. अतः आपसे बार बार अनुरोध है कि आप अपने लेख भेज कर इस पत्रिका की गुणवत्ता को बढ़ाने में हमें योगदान प्रदान करें. परंतु ध्यान रखें कि इंटरनेट से शतप्रतिशत नकल न करें और साथ ही अनुवाद में सावधानी वरतें. साथ ही जो शोध या विचार मौलिक रुप से आपका न हो या जिसमें समाहित कुछ भागों को किसी अन्य जगह से लिया गया हो, उसका संदर्भ अवश्य उद्धत करें. लेख की मौलिकता से सम्बंधित घोषणा पत्र भी अनिवार्य रुप से भेजें. लेख को अपनी भाषा में लिखकर भेजें और अगर जरुरत पड़े तो 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' द्वारा स्वीकृत शब्दावली के सिद्धांत के अनुसार अंग्रेजी व अन्य शब्दों का हिंदी पर्याय मान्य तकनीकी शब्दावली के सहयोग से ही प्राप्त करें.

सप्रेम धन्यवाद,

- मनीष

वैज्ञानिक

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद

(वैज्ञानिक चेतना व चिंतन की विशिष्ट संस्था)

सदस्यता आवेदन प्रपत्र

(परिषद के सदस्यों को वैज्ञानिक पत्रिका निशुल्क भेजी जाती है)

सचिव
हिंदी विज्ञान साहित्य पारिषद दिनांक :......................
(नाम) .... आयु .... क़ो हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का व्यक्तिगत संस्थागत / आजीवन सदस्य बनना है. रु 200 / 2000 / 1000/- का सदस्यता शुल्क चेक/ड्राफ्ट द्वारा Hindi Vigyan Sahitya Parishad' के नाम से संलग्न है. कृपया परिषद का वार्षिक / आजीवन सदस्य बनायें. चेक/ड्राफ्ट का विवरण है

चेक/ड्राफ्ट संख्या .... बैंक का नाम ....ब्रांच .... दिनांक ....
कार्यालय पता ....
....
निवास पता ....
....
फोनः .... मोबाइल ....ईमेल ....
शिक्षा .... रुचि ....
प्रवीणता ....
वैज्ञानिक कृपया कार्यालय निवास के पते पर भेजी जाए.

हस्ताक्षर

(परिषद के कार्यकारिणी के प्रयोग हेतु)

परिषद के कार्यकारिणी की दिनांक ....की बैठक में स्वीकृति के उपरांत आवेदक को वार्षिक / आजीवन सदस्यता सदस्यता प्रदान की जाती है तथा आवेदक की सदस्यता संख्या .... है.

सचिव का हस्ताक्षर

संस्थागत वार्षिक सदस्यता शुल्क रु 200 संस्थागत आजीवन सदस्यता शुल्क रु 2000
व्यक्तिगत आजीवन सदस्यता शुल्क रु 1000

श्री दीनानाथ सिंह
सचिव : हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्
एनआरपीएसईडी, एनआरबी
कमरा नं.-206 ओटी एफ,एपीपी परिसर
भा प अ केंद्र
मुंबई : 400085

वामन कदमों की लंबी छलाँग

विक्रम अंबालाल साराभाई (12.08.1919 - 30.12.1971) की जन्मशताब्दी पर.

- डॉ.रश्मि वार्ष्णेय

अंतरिक्ष और परमाणु ऊर्जा दोनों मंचों को साझा करने वाले डॉ.विक्रम अंबालाल साराभाई की जन्म शताब्दी वर्ष में उन्हें श्रद्धास्वरूप काव्यांजलि अर्पित करते हुए यह रचना प्रस्तुत है : 'वामन कदमों की लंबी छलाँग'. यद्यपि उन्हें भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रमों का जनक माना जाता है, लेकिन इससे पहले वे भारत के परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के सशक्त स्तंभ भी रहे हैं. इसके अलावा भी, उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा की छाप अनेक अन्य क्षेत्रों पर भी बखूबी छोड़ी है. यह कविता उनके शख्सियत के विभिन्न पक्षों को रेखांकित करती काव्यात्मक प्रस्तुति है.

परमाणु ऊर्जा के विकास के लिए ईंधन की कमी दूर करना बहुत बड़ी चुनौती रहा है. इसे दूर करने के लिए जादूगोड़ा में पृथ्वी की क्रोड में से यूरेनियम तलाशने का भागीरथी प्रयास करते हुए भाभा के त्रि-चरणीय कार्यक्रम के पहले चरण को गति प्रदान की थी. इसके साथ-साथ दूसरे चरण के लिए कलपाक्कम में द्रुत प्रजनक रिएक्टर पर काम भी आरंभ किया था. कोलकाता में वीईसीसी की स्थापना करके साइक्लोट्रॉन से समस्थानिक प्राप्त करके कैंसर का इलाज करने के लिए कदम उठाए थे. आधुनिक गतिविधियों के लिए इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों की पूर्ति के लिए ECIL की स्थापना हैदराबाद में की थी.

अंतरिक्ष में भारत का पहला कृत्रिम उपग्रह आर्यभट्ट स्थापित करके भारत को गौरवान्वित किया था. अंतरिक्ष संबंधी उनके योगदान को ध्यान में रखते हुए अंतरराष्ट्रीय खगोल विज्ञान संघ ने उनके नाम पर चंद्रमा के एक क्रेटर का नामकरण किया है. उन्हें समर्पित कुछ अन्य उदाहरण हैं : विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (थुंबा), विक्रम ए.साराभाई सामुदायिक विज्ञान केंद्र (अहमदाबाद), विक्रम जोशी (विश्व क्विज विजेता), विक्रम लैंडर (चंद्रयान-2).

उन्होंने विज्ञान को बढ़ावा देने के लिए अनेक संस्थाएँ जैसे IIM, अहमदाबाद स्थापित की थीं. यहाँ तक कि अपने घर 'रिट्रीट' को ही प्रयोगशाला में बदल दिया था. वस्त्र उद्योग को आधुनिक बनाया और उसके मानक निर्धारित किए.

ज्ञान-विज्ञान के अलावा ललित कलाओं के वर्धन में भी उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और अपनी पत्नी मृणालिनी एवं पुत्री मल्लिका की सहायता से 'दर्पण' नामक संस्था स्थापित की थी.

इस रचना में विरोधाभास, श्लेष, उपमा, अनुप्रास जैसे अलंकारों का साहित्यिक सौंदर्य भी दृष्टिगत होता है.

शत-शत वंदन उस मेधा को,
उड़ान जिसकी अंतरिक्ष तक.
पाँव पसार जिसने समेट लिया,
अपने हाथों में सारा ब्रह्मांड.
शत-शत वंदन...

अंतरिक्ष विज्ञान के वे हैं जनक,
साथ में भाभा के परमाणु वारिस.
उद्योग जगत भी हुआ लाभान्वित,
पा कर उनके ज्ञान का अवलंब.
शत-शत वंदन...

यूरेनियम ढूँढ़ा जादूगोड़ा में,
खातिर बिजली परमाणु की.
पर्यावरण भी रखा संरक्षित
पूरी करके माँग ईंधन की.
शत-शत वंदन ...

प्रजनक रिएक्टर का अक्षय-पात्र,
दे कर दी ऊर्जा अक्षय अपार.
होती है फास्ट ब्रीडिंग निरंतर,
जगमगाए सदियों तक संसार.
शत-शत वंदन ...

जीवन बने स्वस्थ और निरोग,
बस यही कामना की दिन-रात.
हो जाता कैंसर तक का निदान,
साइक्लोट्रॉन का करके प्रयोग.
शत-शत वंदन...

सुनिश्चित की चार मीनार में,
इलेक्ट्रॉनी यंत्रों की सहभागिता.
नाभिकीय ऊर्जा के कार्यक्रम की.
स्वदेश में पूरी कर आवश्यकता.
शत-शत वंदन...

अंतरिक्ष के अथाह जगत में,
रखा था अपना वामन कदम.
बना कर चंद्रमा-सा 'आर्यभट्ट',
भारत का पहला उपग्रह कृत्रिम.
शत-शत वंदन...

संस्थाओं की लंबी श्रृंखला से,
लिया है ज्ञान-विज्ञान को साध.
प्रयोगशाला बनाया घर 'रिट्रीट',
किया अंतरिक्ष-रश्मि पर शोध.
शत-शत वंदन...

उद्योग और व्यापार में,
जोर दिया प्रबंधन का.
आगे बढ़ चले साराभाई,
साथ ले कस्तूरभाई का.
शत-शत वंदन...

किया आधुनिक वस्त्र उद्योग,
कपड़ों पर छाया छीपा रंगीला.
करके नियंत्रण गुणवत्ता का,
नाम किया मैनचेस्टर सरीखा.
शत-शत वंदन...

'दर्पण' में होता प्रतिबिंबित,
सुंदर संगम विज्ञान-कला का.
जुटे ले कर परिवार का साथ,
मृणालिनी हो या मल्लिका.
शत-शत वंदन...

जड़-चेतन सबमें झलकती,
विक्रम ही विक्रम की छवि.
चमक रहे चाँद की धरा पर,
बन कर 'क्रेटर साराभाई'.
शत-शत वंदन...

उड़ान जिसकी अंतरिक्ष तक = श्लेष : अंतरिक्ष वैज्ञानिक थे. अँग्रेजी मुहावरा भी चरितार्थ हो रहा है : Sky is limit.

जादूगोड़ा = झारखंड में इस स्थान पर यूरेनियम की खान हैं.

प्रजनक = ब्रीडर

साइक़्लोट्रॉन = इससे प्राप्त समस्थानिकों का उपयोग इलाज के लिए किया जाता है.

चार मीनार = हैदराबाद में स्थित है तथा इसी शहर में ECIL भी है.

आर्यभट्ट = (1) चाँद की तरह एक उपग्रह. (2) खगोलविद, जिनके नाम पर इस उपग्रह का नाम रखा गया.

वामन कदम = श्लेष : (1) पौराणिक आख्यान के अनुसार, वामन का छोटा कदम अत्यंत बड़ा होता है और संपूर्ण ब्रह्मांड/ तीनों लोकों को नाप लेता है. (2) नील आर्मस्ट्रॉंग ने चंद्रमा पर कदम रखने पर कहा था कि 'यह मनुष्य का छोटा कदम है, लेकिन मानवता की बड़ी छलाँग है.'

रिट्रीट = साराभाई के घर का नाम.

छीपा = गुजरात में कपड़ों पर की जाने वाली छपाई (प्रिंटिंग).

मैनचेस्टर = वस्त्र उद्योग के कारण अहमदाबाद को भारत का मैनचेस्टर कहा जाता है.

दर्पण = साराभाई द्वारा स्थापित ललित कला अकादमी का नाम.

मृणालिनी और मल्लिका = क्रमशः पत्नी और पुत्री.

जड़-चेतन = अनेक संस्थाओं तथा व्यक्ति (जैसे विक्रम जोशी) का नामकरण.

साराभाई क्रेटर = अंतरराष्ट्रीय खगोल विज्ञान संघ द्वारा किया गया चाँद के एक क्रेटर का नामकरण.

19वीं सदी की हिंदी संस्थाओं का विज्ञान के लोकप्रियकरण में योगदान

- डॉ.राकेश कुमार दूबे
मकान नं. 168, नेहियां, शाखा डाकघर के पास,
वाराणसी-221202, उत्तर प्रदेश

आधुनिक भारतीय इतिहास को दशा एवं दिशा देने में विज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका रही है. भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना एवं उसे स्थायित्व प्रदान करने में विज्ञान का योगदान निर्णायक था और 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से ही हिंदी सेवी संस्थाओं ने इस सत्य को समझा और अंग्रेजी शासन की विज्ञान के क्षेत्र में स्थापित 'रंगभेद नीति' का विरोध करते हुए विज्ञान के महत्व को जनता जनार्दन तक जनता की भाषा में पहुंचाने का हर संभव प्रयास किया. 1857 ई. के बाद से ही, उस नवजागरण काल में, हिंदी सेवी संस्थाओं ने विज्ञान से संबंधित लाभप्रद बातों एवं साथ ही पाश्चात्य जगत में हो रही विज्ञान की प्रगति और विज्ञान के बल पर पश्चिमी जातियों द्वारा राष्ट्रोन्नति में लगाई जा रही छलांगों जैसी जानकारी को जनता तक पहुंचानें का गुरुतर कार्य किया. इन हिंदी सेवी संस्थाओं ने विज्ञान के लोकप्रियकरण के माध्यम से भारतीयों में जागृति लाने और भारतीय राष्ट्रवाद को पुष्ट करने के साथ ही एक समृद्ध एवं अखंड भारत के निर्माण का उद्योग किया क्योंकि किसी देश की आर्थिक समृद्धि विज्ञान, प्रौद्योगिकी और लाभप्रद व्यापार पर ही निर्भर करती है और साथ ही इस सत्य का भी उद्‌घाटन किया कि भारत की उन्नति भी विज्ञान के बल पर ही होगी.

आधुनिक भारतीय इतिहास में विज्ञान का अध्ययन एक उपेक्षित विषय रहा है जिस पर सुप्रसिद्ध इतिहासकार डॉ0 कालीदास नाग का भी मत है कि 'हमारे देश में बहुत कम इतिहासकारों ने विज्ञान का अध्ययन किया है और बहुत ही कम वैज्ञानिकों ने विज्ञान के इतिहास पर ध्यान दिया है.' ऐतिहासिक दृष्टिकोण को संज्ञान में लेते हुए यह कहना अनुचित नहीं है कि आज तक हिंदी सेवी संस्थाओं के विज्ञान के क्षेत्र में किये गये कार्यों का न तो पूर्णरुप से धरातलीय सर्वेक्षण हुआ है और न ही उनके कार्यों को संग्रहित ही किया गया है बल्कि हिंदी सेवी संस्थाओं के विज्ञान के क्षेत्र में किये गये प्रयास इतिहासकारों की दृष्टि से वंचित ही रहे हैं जिसका परिणाम यह है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हिंदी सेवी संस्थाओं द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में किये गये कार्य संस्थाओं की रिपोर्टों, पुरानी पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं तक सीमित हो गये, और जिससे नुकसान यह हो रहा है कि राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से विज्ञान-लेखन के क्षेत्र में हमारी राष्ट्रीय धारा पुष्ट नहीं हो पा रही है.

इससे भी बढ़कर भारत का इतिहास, विशेषकर आधुनिक इतिहास, इस ढंग से लिखा गया है कि 18वीं एवं 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारत की स्थिति अत्यंत दयनीय थी. ऐसे में पाश्चात्य देशों से लोगों का आगमन एवं उनकी संस्कृति से सम्पर्क के क्रिया एवं प्रतिक्रिया स्वरुप भारत में नवीन भावों एवं विचारों का उदय हुआ. देश में कतिपय सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों का जन्म हुआ, देश के तीन प्रदेशों-बंगाल, महाराष्ट्र और मद्रास में कतिपय छोटे-छोटे संगठन अस्तित्व में आये और अंत में, 1885 ई0 में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई और कांग्रेस का इतिहास ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास है और कांग्रेस की नीतियां ही राजनीति के साथ ही सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति के लिए उत्तरदायी थीं. इस प्रकार के इतिहास-लेखन के दौरान कांग्रेसी आंदोलन के समानान्तर उन अनेको छोटी-बड़ी संस्थाओं, विशेषकर हिंदी सेवी संस्थाओं, उनसे जुड़े व्यक्तियों एवं उनके द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन के साथ

ही विज्ञान के लोकप्रियकरण के लिए किये गये कार्यों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा ही नहीं गया जो विज्ञान के क्षेत्र में कार्य कर रहे देशवासियों में आत्म सम्मान लाने एवं उन्हें संगठित करने का प्रयास कर रही थीं.

19वीं शताब्दी में जब संसार के राष्ट्र विज्ञान में उन्नति कर रहे थे, उस समय भारत अंग्रेजों के अधीन था. अंग्रेजों ने शासन और नियंत्रण के एक बहुत प्रभावशाली औजार के रुप में विज्ञान का प्रयोग किया. ब्रिटिश शासन 'श्रेष्ठता' पर आधारित था जिसकी निरंतरता प्रजा जनों के बीच से शासन के प्रति अर्जित सहमति और अधीनता का भाव था और इस प्रयोजन में इतिहास-लेखन और एक खास विज्ञान नीति, प्रमुख हथियार थी. अंग्रेज विज्ञान के महत्व से भलीभांति परिचित थे, इसलिए भारत में वैज्ञानिक ज्ञान को हमेंशा हतोत्साहित किया. स्वयं लार्ड मैकाले ने भारत में पश्चिमी विज्ञान के बजाय अंग्रेजी भाषा, साहित्य और कानून की ही शिक्षा पर जोर दिया था.

भारत में विज्ञान के प्रचार के लिए हिंदी भाषा को माध्यम बनाने में अग्रणी भूमिका ईसाई मिशनरियों की थी, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता. मिशनरियों का उद्देश्य ईसाईयत का प्रचार करना था फिर भी उन्होंने भारतीय भाषाओं में लेखन और प्रकाशन शुरु किया. इस कार्य हेतु भारत के कई भागों में सोसाइटियों की स्थापना की गई जिनमें कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी (1817 ई.), आगरा स्कूल बुक सोसाइटी (1833 ई.) इत्यादि प्रमुख थीं. इन संस्थाओं से ईसाईयत के अलावा विज्ञान विषयक हिंदी पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं.

आधुनिक भारत में हिंदी में विज्ञान विषयक ग्रंथ सर्वप्रथम ओंकार भट्ट ज्योतिषी ने लिखी. 1840 ई. में उन्होंने 'भूगोल सार संग्रह' अथवा 'ज्योतिष चंद्रिका' लिखी जो आगरे के छापेखाने से प्रकाशित हुई थी. 1843 ई. का वर्ष इस क्षेत्र में एक विभाजक रेखा थी. इस वर्ष पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) की शिक्षा का नियंत्रण बंगाल से निकलकर प्रांतीय सरकार के हाथ में आया और इसी वर्ष जेम्स थॉमसन इस प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर नियुक्त हुए. थॉमसन (1843-53 ई.) ने बंगाल के विपरीत मातृभाषा पर आधारित ग्राम शिक्षा की एक विस्तृत योजना बनाई ताकि भूमि कर और लोक निर्माण विभागों के लिए शिक्षित व्यक्ति मिल सकें. इस घटना से हिंदी माध्यम से विज्ञान विषयक ग्रंथों के लेखन को बल मिला.

1857 के विद्रोह के कुछ समय पहले ही मिर्जापुर में ईसाई मिशनरियों ने 'आरफन प्रेस' नामक मुद्रणालय स्थापित किया था जहां से शिक्षा संबंधी कई महत्वपूर्ण हिंदी पुस्तकें, जिनमें विज्ञान विषयक पुस्तकें भी थीं, शेरिंग महोदय के संपादन में प्रकाशित हुई. 'भूगोल विद्या', भूचरित्र-दर्पण', 'जन्तु-प्रबंध', 'विद्वान संग्रह', 'मनोरंजक वृतांत' और 'विद्यासागर' सदृश महत्वपूर्ण विज्ञान विषयक पुस्तकें इस मुद्रणालय से आरंभिक दौर में प्रकाशित हुई.

1857 ई0 के बाद देश के विभिन्न भागों में सभा-संगठनों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण का एक व्यापक आंदोलन आरंभ हुआ. वैसे तो भारत में संस्थागत रुप में वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार 1834 से बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका 'एशियाटिक सोसाइटी जर्नल' (त्रैमासिक) से आरंभ होता है जिसमें अंग्रेजी में भूगोल, इतिहास, पुरातत्व के साथ ही विज्ञान में विविध विषयों पर प्रकाशन होता था. परन्तु भारतीयों द्वारा इस तरह का प्रथम प्रयास अलीगढ़ की 'साइंटिफिक सोसाइटी' का था जिसकी स्थापना 1862 ई0 में सर सैयद अहमद खां ने की थी. उन्होंने 1858 ई0 में, मुरादाबाद में, एक पाठशाला बनाई थी जिसके लिए सब विषयों की पुस्तकों का अभाव देख एक समिति बनाई गयी जो कि अनुवाद कार्य करती थी. जो बाद में 'अलीगढ़ वैज्ञानिक समिति' के नाम से प्रसिद्ध हुई. इस समिति ने सर्वसाधारण के उपकारार्थ अनेक पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी और उर्दू भाषा में अनुवाद किया. 1866 ई. से समिति ने 'अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गज़ट' (साप्ताहिक) पत्र का प्रकाशन भी किया जिसमें विज्ञान विषय को काफी महत्व मिला और यह पत्र इस क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ.

परन्तु हिंदी के क्षेत्र में इस तरह का प्रथम प्रयास 'बरेली इंस्टीट्यूट' अथवा 'अंजुमन-ए-बरेली' के रुप में सामने आया जिसकी स्थापना 1861 ई. में हुई थी. इस संस्था ने व्याख्यानों, लेखन और पुस्तकालय स्थापना के माध्यम से जनता जनार्दन के बीच विज्ञान का प्रचार करने और उन्हें प्रभावित करने का प्रयास किया.

संस्थागत रुप में विज्ञान के क्षेत्र में इस तरह का सराहनीय प्रयास 'बनारस इंस्टीट्यूट' का रहा जिसकी स्थापना 1861 ई. में हुई थी जिसका उद्देश्य राजनीतिक विषयों को छोड़कर बौद्धिक, सामाजिक और नैतिक विषयों पर चर्चा करना था. इस संस्था को काशी नरेश का संरक्षण प्राप्त था और बनारस के सैकड़ों भद्रजन इसके सभासद थे. विज्ञान विषयों पर भी इस संस्था में काफी चर्चा होती थी. इसी संस्था में, 1862 ई. में, राजा शिवप्रसाद 'सितारैहिंद' ने एक वाद-विवाद के दौरान भारतीयों को हिंदी में वैज्ञानिक शिक्षा दिये जाने की बात सर्वप्रथम बड़े ही प्रभावशाली ढंग से रखी थी.

विज्ञान के क्षेत्र में आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान भी अविस्मरणीय था. अपने भाषणों और लेखनों में उन्होंने सर्वत्र पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के हिंदी भाषा में प्रचार पर बल दिया. उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि बिना संस्थाओं के निर्माण के देशोन्नति संभव नहीं है. उन्होंने अपनी सभी पत्रिकाओं-कविवचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगजीन और बालाबोधनी में वैज्ञानिक सामग्री तो प्रकाशित की ही साथ ही साथ कवितावर्द्धिनी सभा, तदीय समाज, हिंदी डिबेटिंग क्लब, यंगमेंस एसोसिएशन, बनारस इंस्टीट्यूट सदृश कितनी ही संस्थाओं के निर्माण अथवा उसके संचालन में सहयोग किया. इन संस्थाओं ने भी विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया.

विज्ञान के क्षेत्र में इलाहाबाद की 'हिंदीवर्द्धिनी सभा' का योगदान भी 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध एवं 20वीं सदी के प्रथम दशक तक अतुलनीय रहा. इस संस्था की स्थापना पं0 बालकृष्ण भट्ट के सहयोग से 1876 ई0 में हुई थी और स्वयं बाबू हरिश्चंद्र जी ने इस संस्था का उद्घाटन किया था. 1877 ई0 से इस संस्था ने 'हिंदी प्रदीप' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया और पं0 बालकृष्ण भट्ट इसके संपादक थे. इस पत्रिका ने दो दशकों तक अकेले ही विज्ञान के क्षेत्र में वह कार्य किया जो अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं ने मिलकर भी नहीं किया. पत्रिका के सम्पूर्ण कार्यव्यापारों पर दृष्टिपात करते हुए 'विज्ञान' पत्रिका के प्रथम संपादक श्रीधर पाठक ने लिखा था कि-

"धनि हिंदी प्रदीप प्रकासि जग मूरखता-तम-त्रास हर.
तब पुष्यनाम प्रिय 'भट्ट श्री बालकृष्ण' जग में अमर ..

1878 ई0 में बाबू तोताराम वर्मा ने अलीगढ़ में 'भाषासंवर्द्धिनी सभा' की स्थापना की. यद्यपि इस संस्था का उद्देश्य हिंदी

भाषा का उत्थान करना था परन्तु फिर भी इस संस्था ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. 1876-77 में ही वर्माजी ने एक प्रेस भी खोला था जहां से 1887 से ''भारत बन्धु'' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया. विज्ञान विषय को इस पत्र में कितना महत्व मिला यह बात पत्र के मुखपृष्ठ पर अंकित शब्दावली से ही हो जाता है जिस पर लिखा रहता था-'ए वीकली जर्नल ऑफ लिटरेचर, साइंस, न्यूज एंड पोलिटिक्स'. इस संस्था ने भी विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया.

मेरठ में पं. गौरीदत्त द्वारा 1882 ई. में स्थापित 'देवनागरी प्रचारिणी सभा' का योगदान भी विज्ञान के क्षेत्र में स्मरणीय रहा. स्वयं पं. गौरीदत्त ने रुढ़की इंजीनियरिंग कालेज से विज्ञान की अच्छी शिक्षा पायी थी जिसमें बीजगणित, रेखागणित, सर्वेइंग, ड्राइंग तथा शिल्प इत्यादि प्रमुख था. इस सभा ने पुस्तकों एवं प्रकाशित पत्रिकाओं-देवनागर, नागरी इत्यादि द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में काफी कार्य किया. इस सभा ने ही सर्वप्रथम विज्ञान विषयों पर व्याख्यानमालाओं का आयोजन किया जहां स्लाइड और मैजिक लालटेन का प्रयोग आम जनता की सुभीते के लिए किया जाता था.

1893 ई. से पूर्व कई अन्य संस्थाएं भी कार्यरत थीं जिनका विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा. 1876 में काशी में स्थापित 'पंडित साहित्यिक सभा' 1885 में इटावा में स्थापित 'विचार सभा'; 1887 में खेरी में स्थापित 'खेरी इंस्टीट्यूट'; रायबरेली में स्थापित 'रिफार्म क्लब' के साथ ही 1885 में काशी में स्थापित 'काशी सार्वजनिक सभा' और 1886 में स्थापित 'काशी सुजन समाज' का योगदान भी विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण था. काशी सार्वजनिक सभा और काशी सुजन समाज का उद्देश्य यद्यपि सामाजिक और राजनीतिक था फिर भी इसकी बैठकों में विज्ञान विषयक बातें हुआ करती थीं. आज गंगा सफाई का प्रश्न भारत के सामने एक बड़ी समस्या बनी हुई है परन्तु आज से 134 वर्ष पूर्व 1886 ई0 में ही 'गंगा सफाई अभियान' जैसे महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक कदम उठाने में इन दोनों संस्थाओं की ही अहम भूमिका थी.

1893 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा नामक संस्था की स्थापना हुई जिसने हिंदी में विज्ञान-लेखन एवं प्रकाशन के क्षेत्र में वह कार्य किया जो कि कितने ही मंत्रालयों और संस्थाओं ने मिलकर भी नहीं किया. सभा ने 1896 ई. से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और सन् 1900 ई. से 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन किया जिसमें विज्ञान विषयक महत्वपूर्ण लेखों का प्रकाशन हुआ. 1900 ई. से ही विज्ञान विषयक लेखों पर 'रजत पदक' देने का आयोजन किया. हिंदी की प्रथम वैज्ञानिक शब्दावली बनाने का जैसा सुनियोजित और दीर्घकालीन प्रयास सभा ने किया, यह देश को सभा की एक अमूल्य देन है. 7 वर्ष के प्रयत्न के बाद 'हिंदी साइंटिफिक ग्लॉसरी' नाम से यह शब्दकोश बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित किया गया था. 1904 ई. से आरंभ 'सुबोध व्याख्यानमाला' के माध्यम से विज्ञान के लोकप्रियकरण का जैसा कार्य सभा द्वारा किया गया वह 115 वर्ष बाद आज भी प्रासंगिक है और विश्वविद्यालयों में आयोजित 'इक्सटेंशन लेक्चर्स' इसके सबसे सुंदर उदाहरण हैं. इन कार्यों के अलावा नागरी प्रचारिणी लेखमाला, नागरी प्रचारिणी ग्रंथमाला' मनोरंजन पुस्तकमाला, महिला पुस्तकमाला, 'महेंदुलाल गर्ग विज्ञान ग्रन्थावली' जैसी कितनी ही ग्रंथमालाओं में अनेकों विज्ञान विषयक पुस्तकें हिंदी में प्रकाशित कर हिंदी के वैज्ञानिक साहित्य को समृद्ध करने का कार्य किया. इससे भी अधिक, सभा के द्वारा हिंदी में शोधपरक विज्ञान विषयक पुस्तकों के लेखन और प्रकाशन को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु 'रेडिचे रजत पदक' और 'डॉ0 छन्नूलाल स्वर्ण पदक' तक देने का आयोजन किया गया.

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में हुए संस्था निर्माण आंदोलन और स्थापित संस्थाओं, विशेषकर हिंदी सेवी संस्थाओं ने विज्ञान के प्रचार-प्रसार एवं लोकप्रियकरण का महत्वपूर्ण कार्य किया. इन संस्थाओं, इनके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं ने विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया और उसके साहित्य को परिपूर्ण करने का हर संभव प्रयास किया. हिंदी सेवी संस्थाओं ने जनता जनार्दन की भाषा में वैज्ञानिक ज्ञान को जनता तक पहुचानें का गुरुतर कार्य किया. विज्ञान के प्रचार के लिए इन संस्थाओं ने उन समस्त माध्यमों एवं उपकरणों-परीक्षा, व्याख्यानमाला, पुरस्कार एवं पदक तथा मैजिक लालटेन एवं स्लाइड इत्यादि को उपयोग में लाया जिससे आमजन लाभ उठा सकें और इसके मूल में था राष्ट्रहित. हिंदी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं में भी हिंदी के समानांतर ही विज्ञान-लेखन एवं लोकप्रियकरण का आंदोलन आरंभ हुआ था परन्तु जितनी प्रगति हिंदी में हुई, उतनी शायद किसी भी अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं हुई जिसका श्रेय बहुत कुछ हिंदी संस्थाओं को जाता है. 19वीं सदी की हिंदी संस्थाओं ने विज्ञान के प्रचार एवं लोकप्रियकरण का जो कार्य आरंभ किया उसे 20वीं सदी की हिंदी संस्थाओं-हिंदी साहित्य सम्मेलन, विज्ञान परिषद, हिंदुस्तानी ऐकेडेमी इत्यादि ने पूर्णता तक पहुंचाने का कार्य किया.

बकरी का दूध गुणवत्ता से भरपूर

चेतना गंगवार [1], अनुज कुमार सिंह सिकरवार [1], श्री प्रकाश सिंह [2] एवं सुरेश दिनकर खर्चे [1]
1.केंद्रीय बकरी अनुसंधान संस्थान, फरह, मथुरा
2. पं.दीनदयाल उपाध्याय पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गौ अनुसंधान संस्थान, मथुरा

बकरी पालन प्राचीन समय से ही पशुपालन का एक अभिन्न अंग रहा है. बकरी पालन मुख्यतः भूमिहीन कृषि श्रमिक, छोटे सीमांत किसान तथा सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों में अधिक लोकप्रिय है. बहुउद्देशीय उपयोगिता एवं सरल प्रबंधन कृषक वर्ग के बकरी पालन की ओर बढ़ते रुझान के प्रमुख कारण है. भारत में बकरियों की संख्या 1351.7 लाख है, जिसमें से अधिकांश आबादी (95.5%) ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित है और केवल अल्प भाग (4.5%) ही शहरी क्षेत्रों में पाया जाता. भारत वर्ष में होने वाले कुल दुग्ध और मांस उत्पादन में बकरी का पर्याप्त योगदान है. बकरी का दूध और मांस भारत में उत्पादित कुल दुग्ध और मांस का क्रमशः 3% (46.7 लाख टन) और 13% (9.4 लाख टन) बड़ा अवियोज्य भाग है. ये आंकड़े स्पष्ट रूप से भारतीय समाज में बकरी पालन के व्यवसाय के महत्व को प्रमाणित करते है.

भारत में बकरी का दूध प्रधान रूप से घरेलू उपभोग के लिए एक चिरपरिचित वस्तु है. मानव जनसंख्या में वृद्धि एवं बकरी के दूध के सेवन से होने वाले लाभों के फलस्वरूप इसकी मांग के स्तर में निरंतर वृद्धि पायी गई है. एक ओर जहाँ बकरी के दूध का प्रयोग परंपरागत चिकित्सा पद्धति में औषधि के रूप में होता है वहीं दूसरी ओर आज के युग में मनुष्य शरीर में बढ़ते जठरान्त्र रोग और गाय के दूध से एलर्जी भी बकरी के दूध की आवश्यकता के प्रमुख कारक है. बकरी का दूध मनुष्य तथा गाय के दूध की तुलना में अधिक सुपाच्य, क्षारीय, प्रतिरोधक क्षमता और औषधीय गुणयुक्त होता है.

बकरी के दूध का संगठन : बकरी का दूध, गाय और मनुष्य के दूध से संगठनात्मक रूप से भिन्न होता है (तालिका 1). आहार, नस्ल, प्रबंधन, पर्यावरण की स्थिति, ब्यात, ऋतु, दुग्ध उत्पादन का चरण एवं स्वास्थ्य अवस्था दुग्ध संरचना में परिवर्तन के कुछ प्रमुख स्त्रोत है. बकरी के दूध में गाय के दूध की तुलना में कुछ विशेष गुण, जैसे कि वसा कणों का न्यून आकार एवं अल्फा1- केसीन की कम मात्रा होने के कारण इसके उत्पादों में अतिरिक्त जल प्रतिबंधन क्षमता, मुलायम, नरम एवं कम गाढ़ापन होता है. स्वाद में गाय के दूध से अधिक तीक्ष्णता उपभोक्ताओं में बकरी के दूध की स्वीकृति को घटाने का कारक है. बकरी के दूध में केसिन मिसेलों की आधारभूत बनावट, संरचना एवं आकार, गैर प्रोटीन नाइट्रोजन खनिज यौगिकों की वर्धित मात्राओं तथा प्रोटीन के अंशों के अनुपात में मौलिक भिन्नताएँ पाई गई है. बकरी के दूध की बुनियादी पोषक संरचना गाय के दूध से मेल खाती है क्योंकि दोनों में प्रोटीन और राख अधिक मात्रा में मिलती है, वहीं दोनों में ही लेक्टोज़ की मात्रा मनुष्य के दूध की अपेक्षाकृत कम है. उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली बकरियों के दूध में उनके समकक्ष पाई जाने वाली गायों की तुलना में अधिक वसा एवं राख की मात्रा पाई जाती है.

बकरी के दूध की रासायनिक संरचना पर ऋतुओं का भी गहन प्रभाव है. प्रारम्भिक दुग्धपानकी अवस्था के दौरान बकरी के दूध में सभी मुख्य घटक अधिक मात्रा में मिलते हैं, जिनमें तीव्रता से गिरावट आती है और दुग्धपान के अंतिम चरण में पुनः वृद्धि होती है. हालांकि लेक्टोज़ की मात्रा दुग्धपानकी अवस्था के प्रभाव से मुक्त है.

गाय के दूध की भांति बकरी के दूध में भी अल्फा एस1, अल्फा एस 2, बीटा एवं काप्पा केसिन पाए जाते हैं परंतु इनका अनुपात दोनों में भिन्न होता हैं (तालिका 2). शोधानुसार बकरी के दूध के केसिन में मुख्यतः बीटा केसिन की मात्रा सर्वाधिक होती है वहीं गाय के दूध में अल्फा एस1 अधिक होता है. इन भिन्नताओं के फलस्वरूप ही बकरी का दूध नरम दही उत्पादन के लिए उपयुक्त, अधिक पाच्य एवं न्यूनतम प्रत्यूर्जक है. वसा एवं लिपिड बकरी के दूध का सबसे उपेक्षित भाग है. बकरी दुग्ध वसा एवं गाय के दूध की वसा में उल्लेखनीय अंतर है क्योंकि इसमें जहां एक ओर ब्यूटायरिक (सी 4:0), केप्रोइक (सी 6:0), केप्रिलिक (सी 8:0), केपरिक(सी 10:0), लोरिक (सी 12:0),पल्मिटिक (सी 16:0) एवं लिनोलीक (सी 18:2) अम्ल की विपुल मात्रा होती हैं, वहीं दूसरी ओर स्टियरिक एवं ओलीक अम्ल अल्पतर मात्रा में उपस्थित होते हैं.

बकरी के दूध के पौष्टिक एवं औषधीय गुण

सुपाचकता : बकरी का दूध मनुष्य तथा गाय के दूध की तुलना में अधिक सुपाच्य, क्षारीय एवं प्रतिरोधक क्षमता युक्त होता है. वसा कणों के लघु आकार, बेहतर फैलाव एवं बहुल सतही क्षेत्र भी पाच्यता में वृद्धि का कारण है. इस कारणवश मनुष्य के पाचनतंत्र के लिए बकरी का दूध गाय के दूध की तुलना में अधिक उपयोगी है. लघु एवं मध्यम वसायुक्त अम्लों की उच्च अनुपात में उपस्थिति बकरी के दूध के पाचन की सरलता तथा तीव्रता को बढ़ाने में सहायक हैं. बकरी के दूध में पाए जाने वाले लघु एवं मध्यम वसायुक्त अम्लों से निर्मित ट्राइअसाइल्गिलसेरोल कणों को मिसेल गठन के बिना ही पोर्टल शिरा में अवशोषित कर लिया जाता है. अल्फा एस 1 केसिन और एग्लुटिनिन की निम्नतर मात्रा भी बकरी के दूध की पाच्यता की वृद्धि में सहायता करती है क्योंकि अल्फा एस 1 केसिन और एग्लुटिनिन दूध के पाचन में विलंब उत्पन्न करने के लिए जाने जाते हैं.

रोगाणुरोधी गुण : बकरी के दूध में व्यापक रूप से पाया जाने वाला लेक्टोपर ऑक्सिडेज़ प्रोटीन अनेक घातक व्याधिओं जैसे हैज़ा (विब्रिओ कॉलेरी), आंत्र ज्वर (सलमोनेला टाइफी), निमोनिया (क्लेबसिएला नुमोनी), पेचिश (शिगेला डाइसेंटेरी) इत्यादि के रोगाणुओं से लड़ने की क्षमता बढ़ाता है.

कुअवशोषण विकार अवरोधी गुण : कुअवशोषण विकार

वह असामान्य स्थिति है जिसमें जठरान्त्र भोजन में पाए जाने वाले पोषक तत्वों को अवशोषित करने मे असमर्थ हो जाता है. इस विकार के फलस्वरूप मानव शरीर में पोषक तत्वों की कमी रक्ताल्पता जैसी व्याधिओं को जन्म दे देती है।

बकरी के दूध में मिलने वाले पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम, आयरन, मैग्निशियम, फॉस्फोरस, जिंक एवं सेलीनियम का

अवशोषण गाय के दूध के पोषक तत्वों की तुलना में अधिक है. इसका मुख्य कारण बकरी के दूध में पाए जाने वाले प्रोटीन, सिस्टीन, विटामिन ए और विटामिन डी की अधिक मात्रा को बताया गया है.

हृदय एवं रक्तवाहिकाओं संबंधी रोगअवरोधी गुण : भारत में हृदय संबंधी रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या बढ़ोतरी कि ओर अग्रसर है. इन व्याधिओं का मुख्य कारण रक्त वाहिकाओं में अथेरोस्क्लोरोटिक पट्टिका का जमना है. यह पट्टिका कोलेस्टेरोल से बनी होती है जो कि कम घनत्व वाले लाइपोप्रोटीन द्वारा यकृत से धमनियों तक पहुंचाया जाता है. आजकल प्रचलित जीवन शैली जैसे धूम्रपान, असंतुलित आहार एवं व्यायाम की कमी अथेरोस्क्लेरोसिस के खतरे को बढ़ाने का काम करती है.

बकरी के दूध में पाए जाने वाले केप्रोइक, केप्रिलिक तथा

तालिका 1: विभिन्न दूध की मूल संरचना (औसत मान प्रति 100 ग्राम)

घटक	बकरी	गाय	मनुष्य
कुल ठोस तत्व (ग्राम)	12.2	12.3	12.3
वसा (%)	4.0-4.5	3.8	4.1
प्रोटीन(%)	3.2	3.3	1.3
लेक्टोज़(%)	4.6	4.7	7.2
भस्म	0.8	0.7	0.2
पानी(%)	87.5	87.7	86.7
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	70	69	68
सोडियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	34	50	14
पोटैशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	180	150	58
कैल्शियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	129	120	34
मैगिनशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	20	12	3
फॉस्फोरस (मिलीग्राम/100 ग्राम)	106	95	14
आयरन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.04-0.1	0.05	0.07
क्लोरीन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	130	95	42
विटामिन ए (आइ यू /100ग्राम)	185	126	241
थायमीन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.05	0.04	0.014
राइबोफ्लेविन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.14	0.16	0.04
पैंटोथेनिक अम्ल (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.31	0.314	-
नियासिन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.28	0.08	0.18
विटामिन बी (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.05	0.04	0.01
फॉलिक अम्ल (मिलीग्राम/लीटर)	6	50	56
विटामिन बी12 (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.05	0.14	0.14
बायोटिन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	2	2	0.70
विटामिन सी (मिलीग्राम/100 ग्राम)	1.5	1.5	1
विटामिन डी (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.06	0.03	0.025

केपरिक वसायुक्त अम्लों से निर्मित मध्यम श्रृंखला ट्राइग्लिसेराइड, कम घनत्व वाले लाइपोप्रोटीन की ऑक्सीकरण को अवरोधित करते है. इससे रक्त में कोलेस्टेरोल के स्तर में गिरावट और हृदय के स्वास्थ्य में सुधार होता है.

दूध से एलर्जी का निवारण : अल्फा एस 1 केसिन एवं बीटा लेक्टोग्लोबुलिन गाय के दूध में पाए जाने वाले मुख्य एलर्जिक तत्व है. बकरी के दूध में गाय के दूध के अपेक्षाकृत इन तत्वों का स्तर कम पाया जाता है जिससे इसकी एलर्जी में भारी गिरावट आती है.

लेक्टोज़ असहिष्णुता का उपशमन : मनुष्य, गाय एवं बकरी सभी के दूध में लेक्टोज़ उपस्थित होता हैं परंतु फिर भी लेक्टोज़ असहिष्णु व्यक्ति भी बकरी के दूध का सेवन कर सकता है. इसका संभव कारण बकरी के दूध की पाच्य श्रेष्ठता में छिपा है. बकरी के दूध के पोषक तत्व पूर्णतः अवशोषित हो जाते है जिससे अपाच्य अवशेष बृहदांत्र तक पहुँचने तथा किण्वन क्रिया में भाग लेने में असक्षम रहते हैं.

प्रतिरक्षा न्यूनाधिक गुण : बकरी का दूध प्रतिरक्षा बढ़ाने में सहायक है. बकरी के दूध के सेवन से रक्त कोशिकाओं से नाईट्रिक ऑक्साइड तथा साइटोकाइन जैसे इन्टर ल्यूकिन 10, टयूमर नेक्रोसिस फैक्टर अल्फा, एवं इन्टर ल्यूकिन 6 का स्राव बढ़ जाता है. उपरोक्त कारक मानव शरीर में रोग प्रतिरक्षण क्षमता बढ़ाने का कार्य करते हैं. इन्हीं कारणों से कई असाध्य रोगों जैसे डेंगू में बकरी के दूध के सेवन की सलाह दी जाती है.

कैंसर प्रतिरोधी गुण : बकरी के दूध में संयुग्मित लिनोलीक अम्ल उच्च मात्रा में उपस्थित होता है. शोधकर्ताओं ने पाया है कि इस अम्ल में कर्क रोग प्रतिरोधी क्षमताएँ होती है. मनुष्यों में स्तन, बृहदांत्र कैंसर जैसी व्याधिओं से बचाव के लिए बकरी के दूध के सेवनकी अनुशंसा की गई है.

तालिका 2: बकरी और गाय के दूध के प्रोटीन की तुलना

प्रोटीन	सघनता (%)	
	बकरी का दूध	गाय का दूध
कुल केसिन	2.33-4.63	2.4-2.8
अल्फा एस 1केसिन	0-28	50-53.6
अल्फा एस 2केसिन	10-25	12.5-14.3
बीटा केसिन	6-64	37.5-39.3
काप्पा केसिन	15-29	8.3-14.3
व्हे प्रोटीन	0.37-0.70	0.5-0.7
बीटा-लेक्टोग्लोबुलिन	39.2-72.1	40-57.1
अल्फा-लेक्टअलबुमीन	17.8-33.3	12-24.3
सीरम अलबुमीन/ लेक्टोफेर्रिन	5.1-21.5	4-5.71
इम्मुनोग्लोबुलिन	4.6-21.4	10-25.7

ब्रह्माण्डीय-किरण अनुसंधान में होमी भाभा का योगदान

- कृष्ण कुमार सिंह एवं संदीप गोदियाल
खगोल भौतिकी विज्ञान प्रभाग, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,
मुम्बई-400085, भारत

सारांश

यह निबंध होमी भाभा के केवल ब्रह्माण्डीय किरण शोध में दिये गये योगदान तक सीमित है तथा उनके विज्ञान के क्षेत्र में दिये गये दूसरे असंख्य योगदानों को सम्मिलित नहीं करता है. होमी भाभा के मुख्य वैज्ञानिक कार्य तथा उपलब्धियां सैद्धांतिक भौतिकी के मूलभूत सिद्धांतों से संबंधित रहे हैं. विदेश प्रवास के दौरान कैंब्रिज में उनके द्वारा किये गये कार्य लगभग परिघटनात्मक थे परन्तु भारत में अधिक गणितीय थे. सैद्धांतिक कार्यों के अतिरिक्त, उनकी प्रयोगात्मक कार्यों में भी बहुत रुचि थी. होमी भाभा के द्वारा प्रारम्भ किये गये सभी ब्रह्माण्डीय किरण प्रयोगों में नई विधियाँ तथा उनके द्वारा तैयार की गयी तकनीक प्रयुक्त हुई हैं. होमी भाभा के पास प्रबंधन की नवीन शैली, उत्कृष्ट वैज्ञानिक नेतृत्व तथा असाधारण शोध कार्य के साथ-साथ एक बहुआयामी व्यक्तित्व भी था. उन्होंने आधुनिक भारतीय नाभिकीय विज्ञान एवं तकनीक को पोषित किया तथा भारत में ब्रह्माण्डीय किरणों से संबंधित शोध कार्य होमी भाभा के दृष्टान्त पर ही प्रारम्भ हुए. होमी भाभा द्वारा शुरु किये गये ब्रह्माण्डीय किरण शोध को जारी रखते हुए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बी.ए.आर.सी.) में खगोल भौतिकी विज्ञान प्रभाग ब्रह्माण्ड में ब्रह्माण्डीय किरणों के उदभव का अन्वेषण करने के एक मुख्य उद्देश्य के साथ अति उच्च ऊर्जा खगोल भौतिकी कार्यक्रम का अनुसरण कर रहा है.

परिचय

ब्रह्माण्डीय-किरण अनुसंधान, बीसवीं सदी के प्रारम्भ में, 1986 में रेडियो-धर्मिता की खोज के पश्चात प्रारम्भ हुआ. उस समय रेडियोधर्मी-विकिरण को तीन प्रकारों, अल्फा-किरण, बीटा-किरण तथा गामा-किरण में वर्गीकृत किया गया. रेडियोधर्मी-विकिरण की खोज के पश्चात शीघ्र ही यह महसूस किया गया कि पृथ्वी के वायुमंडल में उपस्थित वायु उच्च दर के साथ आयनित होती है और यह आशंका जताई गयी कि, प्राकृतिक रेडियोधर्मिता में उपस्थित गामा-किरण इस आयनन का प्राथमिक कारण होगा. इस प्रेक्षण ने, गामा-किरण वेधन को समझने के लिए पृथ्वी के वायुमंडल की विभिन्न ऊंचाइयों पर आयनन के मापन हेतु प्रेरित किया. 1912 में, ऑस्ट्रिया में, विक्टर हेस ने उच्च दाब के अंतर्गत, ऑर्गन गैस से भरे एक गुब्बारे को 5 किलोमीटर की ऊँचाई पर ले जाकर विकिरण द्वारा उत्पादित होने वाली चालकता का मापन किया. इस प्रयोग से, विक्टर हेस ने यह पता लगाया कि वायु का आयनन पृथ्वी के वायुमंडल में घटने के बजाय ऊँचाई के साथ प्रबल रुप से बढ़ता है. विक्टर हेस द्वारा इस प्रेक्षण की एकमात्र व्याख्या यह थी कि एक अति उच्च वेधन क्षमता की विकिरण पृथ्वी के वायुमंडल में ऊपर से प्रवेश करता है. दूसरी ओर, आयनन मापन की एक शृंखला का निष्पादन, डिब्बों में स्थित विद्युतदर्शियों को समुद्र में डुबाने पर किया गया तथा डोमेनिको पासिनी द्वारा यह अनुभव किया गया कि गहराई के साथ आयनन घटता है. 1913 में, जर्मनी में, कोल्होस्टर ने 9 किलोमीटर की ऊँचाई पर आयनन का मापन करके विक्टर हेस के मापनों में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया. इस प्रकार के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि एक प्रकार का विकिरण पृथ्वी के ऊपर,

ऊंचाई से आता है तथा यह पृथ्वी के वायुमंडल से गुजरते हुए दृढ़तापूर्वक, परन्तु पूर्ण रुप से अवशोषित नहीं होता है. अतः यह प्रस्तावित किया गया कि इस आयनन विकिरण की कोई स्थलीय उत्पत्ति नहीं है, अपितु यह अंतरिक्ष के सुदूर भागों अथवा ब्रह्माण्डीय उदगम से उत्पन्न हुआ है. 1925 में मिलिकन द्वारा सर्वप्रथम इस आयनन विकिरण का वर्णन करने हेतु ब्रह्मांडीय-किरण का नाम प्रयोग किया गया तथा इस प्रकार क्षेत्र का यह वर्तमान नाम रचित हुआ. 1936 में विक्टर हेस को उनकी ब्रह्माण्डीय किरणों की खोज के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ.

1933 तक, ब्रह्माण्डीय किरणों की व्याख्या करने हेतु दो वैकल्पिक परिकल्पनायें प्रस्तावित की गयी थी. प्रथम परिकल्पना द्वारा यह कल्पित किया गया कि ब्रह्माण्डीय किरण एक्स-किरण अथवा गामा-किरण की भांति फोटॉन हैं. इन फोटॉनों की वेधन-क्षमता, उप-परमाणविक प्रक्रियाओं जैसे हीलियम से हाइड्रोजन के बनने अथवा हाइड्रोजन परमाणुओं के विनाश से उत्सर्जित होने वाले विकिरण की ऊर्जा के अनुरुप है. मिलिकन के अनुसार, ब्रह्माण्डीय किरणें, हल्के नाभिकों के समूहों से भारी परमाणु नाभिकों के बनने के दौरान उत्पादित होती हैं. जेम्स जींस ने हाइड्रोजन परमाणुओं के विनाश को ब्रह्माण्डीय किरणों की उत्पत्ति का एक स्रोत माना है. द्वितीय परिकल्पना इस तथ्य पर आधारित है कि ब्रह्माण्डीय किरणें फोटॉन नहीं, बल्कि बाहरी अंतरिक्ष से पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करने वाले आवेशित कण हैं. डाउविलियर ने यह प्रस्तावित किया कि ये आवशित कण सूर्य से आते हैं. लीमैट्रे, ब्रह्माण्डीय किरणों की उत्पत्ति का श्रेय ब्रह्माण्ड के आद्यकालिक विस्फोट को देते हैं तथा उनका मानना है कि उस समय में अंतरिक्ष में तैरते हुए कुछ परमाणु, ब्रह्माण्डीय किरणों को संगठित करते हैं.

ब्रह्माण्डीय किरण शोध का इतिहास

ब्रह्माण्डीय किरणों की खोज के पहले तीस वर्षों के दौरान, ब्रह्माण्डीय किरणों के अति-ऊर्जा भौतिकी गुणों का अध्ययन विस्तृत रुप से किया गया, क्योंकि उस समय तक उच्च ऊर्जा कणों का कोई अन्य स्रोत ज्ञात नहीं था. 1929 में, स्कोबेल्जिन ने क्वान्टम विद्युत-गतिकी तथा विद्युत-चुम्बकीय सोपानी सिद्धांत का प्रयोग करते हुए ब्रह्माण्डीय किरणों से प्रेरित झरने की खोज की. पृथ्वी के वायुमंडल में झरने के विकास हेतु ब्रह्माण्डीय गामा-किरणों द्वारा होने वाले क्रॉम्पटन-प्रकीर्णन को उत्तरदायी माना गया. अभ्र कोषों का प्रयोग करते हुए झरना कणों के प्रत्यक्ष संसूचन ने इस क्षेत्र में नयी खोजों को प्रेरित किया. आवेशित कणों की गणना हेतु, सर्वप्रथम सफलतम रुप से विकसित उपकरण गीगर-मुलर गणक था. ब्रह्माण्डीय किरणों की प्रकृति की खोज विद्युतमापी के स्थान पर आवेशित-कण गणकों के प्रयोग द्वारा की गयी तथा यह पाया गया कि ब्रह्माण्डीय किरण कण गामा-किरणों से भिन्न हैं. विभिन्न प्रकार के गणक प्रयोगों का उपयोग करते हुए यह भी दर्शाया गया कि ब्रह्माण्डीय किरणें पृथ्वी की सतह तक वायुमंडलीय झरनों के रुप में पहुंचती हैं. ब्रह्माण्डीय किरणों की असली प्रकृति, जो कि धनात्मक आवेशित नाभिक है, जानने के पश्चात ब्रह्माण्डीय किरण शोध के दूसरे क्षेत्र का प्रारम्भ इनका भू-चुम्बकीय क्षेत्र से अन्योन्य क्रिया के अध्ययन करने हेतु हुआ. इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा प्रसिद्ध 'पूर्व-पश्चिम प्रभाव' भी खोजा गया था. इस प्रभाव द्वारा यह पता चलता है कि ब्रह्माण्डीय किरणें, पूर्व की तुलना में पश्चिम दिशा से अधिक आती हैं. पृथ्वी की सतह के विभिन्न अक्षांशों पर ब्रह्माण्डीय किरणों की तीव्रता की माप ने यह इंगित किया कि तीव्रता, भू-चुम्बकीय ध्रुव पर अधिकतम तथा भू-चुम्बकीय भूमध्य रेखा पर न्यूनतम है. ये मापन, प्रेक्षित सौर चक्र तथा सौर सक्रियता से भी संबंधित थे. गुब्बारे एवं उपग्रह प्रयोगों के विकास ने, ब्रह्माण्डीय किरणों के प्रत्यक्ष अध्ययन द्वारा उनके रासायनिक संघटन को समझने में महत्वपूर्म योगदान दिया. प्रयोगशाला में नाभिकीय अभिक्रिया अनुप्रस्थ-काट मापनों को, ब्रह्माण्डीय किरणों की अन्योन्य-क्रियाओं के दौरान उनके अंतरातारकीय आकाश में संचरण को समझने हेतु प्रयुक्त किया गया. ब्रह्माण्डीय किरणों की हमारी आकाशगंगा (मिल्की-वे) में संरोध-अवधि का आकलन अस्थायी समस्थानिकों के संसूचन से किया गया.

ब्रह्माण्डीय किरणों की खोज के 105 वर्ष से अधिक होने के पश्चात, इन्हें अति ऊर्जावान, उदासीन एवं आवेशित कणों के रुप में अभिलक्षित किया गया है जो कि गहन ब्रह्मांड से पृथ्वी के वायुमंडल पर सतत रुप से टकरा रहे हैं. अधिकांश ब्रह्माण्डीय किरणें आवेशित कण हैं, जिनमें 85% प्रोटॉन, 11% एल्फा-कण, 2% इलेक्ट्रॉन, 1% भारी तत्वों के नाभिक जैसे आयरन एवं युरेनियम सम्मिलित हैं. ब्रह्माण्डीय किरणों का अति सूक्ष्म भाग (1% से कम) उदासीन कण जैसे कि गामा-किरण, न्यूट्रिनो तथा एन्टी-न्यूट्रिनो हैं. ब्रह्माण्डीय किरणें सापेक्षकीय हैं तथा इनमें से कुछ की अति-सापेक्षकीय गतिज ऊर्जा 10^{21} इलेक्ट्रॉन वोल्ट तक है. ब्रह्माण्डीय किरणों का मापित ऊर्जा वर्णक्रम 0.1-10^{12} गीगा-इलेक्ट्रॉन वोल्ट तक विस्तृत है तथा फ्लक्स मान 10^{4} (मी.^{2}-स्टेरेडियन-सेकंड-गीगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट)$^{-1}$ से 10^{-28} (मी.^{2}-स्टेरेडियन-सेकंड-गीगा

इलेक्ट्रॉन वोल्ट)$^{-1}$ तक परिवर्तनशील हैं. विभिन्न उर्जाओं की ब्रह्माण्डीय किरणें, व्यापक ऊर्जा परास में हमारे ब्रह्मांड की उत्पत्ति के समय से अन्वेषण करने हेतु एक संदेशवाहक के रुप में प्रयुक्त की जाती हैं.

ब्रह्माण्डीय किरणों के क्षेत्र में होमी भाभा का योगदान

(अ) विदेश में किये गये कार्य :

होमी जहाँगीर भाभा (30 अक्टूबर 1909-24 जनवरी 1966) विश्व में ''भारतीय-परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के जनक'' के रुप में प्रसिद्ध हैं. हालांकि, भारत की युवा पीढ़ी, उनके सैद्धांतिक भौतिकी एवं ब्रह्माण्डीय किरण शोध के क्षेत्र में दिये गये उत्कृष्ट योगदानों से भलीभांति परिचित नहीं है. होमी भाभा ने 1927 में गोनविले एवं केयस कॉलेज, कैम्ब्रिज में यॉंत्रिक अभियांत्रिकी के विद्यार्थी के रुप में प्रवेश लिया. उसी वर्ष डिराक ने, कैम्ब्रिज में मैक्सवेल समीकरण द्वारा फोटॉन अथवा विकिरण के व्यवहार का वर्णन करने हेतु डिराक समीकरण को प्रस्तावित किया. 1930 में डिराक ने भौतिकी में प्रतिकण की संकल्पना को प्रस्तुत करने के लिए 'होल सिद्धांत'' को प्रस्तावित किया. डिराक के अनुसार 'होल' एक अप्राप्य ऋणात्मक ऊर्जा अवस्था है जो कि इलेक्ट्रॉन के विद्युत आवेश के विपरीत एक आवेशित कण के रुप में व्यवहार करता है. ये कण प्रयोगात्मक रुप से एंडरसन द्वारा 1932 में खोजे गये तथा इन्हें अब पॉजिट्रान के नाम से जाना जाता है. होमी भाभा, क्वान्टम विद्युत गतिकी में इस प्रकार की रोमांचक उन्नति से बहुत प्रभावित हुए. 1930 में यॉंत्रिक-अभियांत्रिकी में डिग्री पूर्ण करने के पश्चात होमी भाभा ने अपना करियर, पॉजिट्रान सिद्धांत तथा ब्रह्माण्डीय किरण भौतिकी में प्रारंभिक अभिरुचि के साथ कैंब्रिज में सैद्धांतिक भौतिकविद् के रुप में कार्य करते हुए प्रारम्भ किया. 1933 में होमी भाभा का सबसे पहला प्रकाशन ब्रह्माण्डीय किरणों के अवशोषण पर था, जिसमें उन्होंने इलेक्ट्रॉन झरनों की भूमिका के बारे में चर्चा की है. इसके बाद भाभा ने डिराक द्वारा प्रस्तावित होल-सिद्धांत का प्रयोग करते हुए, क्वान्टम विद्युत गतिकी में पॉजिट्रान-अन्योन्य क्रिया पर कार्य करना आरम्भ किया. 1934 में होमी ने K कोश में इलेक्ट्रॉनों द्वारा तीव्र पॉजिट्रानों के विनाश से संबंधित अध्ययन को रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन में प्रकाशित किया. इसके पश्चात उन्होंने विद्युत गतिकी में तीव्र आवेशित कणों द्वारा इलेक्ट्रॉन-पॉजिट्रान युग्म रचना पर कार्य करना प्रारम्भ किया. होमी भाभा द्वारा 1935 में, एक शोध पत्र ''डिराक पॉजिट्रान सिद्धांत पर विनिमय के साथ इलेक्ट्रॉनों द्वारा पॉजिट्रानों का प्रकीर्णन'' नामक शीर्षक से रॉयल सोसाइटी ऑफ लंदन में प्रकाशित किया गया, जिसे आज 'भाभा प्रकीर्णन' के नाम से जाना जाता है. भाभा-प्रकिर्णन सिद्धांत में प्रयुक्त व्युत्पन्न सूत्र आज भी कण-त्वरकों में पॉजिट्रान अथवा दूसरे प्रतिकण पुंजों का प्रयोग करते हुए पुंजों का अंशांकन करने में नियमित रुप से उपयोग किये जाते हैं.

1936 में होमी भाभा ने वरिष्ठ अध्येतावृत्ति प्राप्त की तथा वह हिटलर से मिले जो कि उच्च ऊर्जा भौतिकी में रुचिकर थे. 1937 में भाभा ने हिटलर के सहयोग से ख्यातिप्राप्त 'इलेक्ट्रॉन झरनों के जालक सिद्धांत' को प्रस्तावित किया और विभिन्न गहराईयों पर जालक में इलेक्ट्रॉनों की संख्या हेतु उनकी विभिन्न प्रारंभिक ऊर्जा के लिए एक परिमाणात्मक आकलन भी प्रस्तुत किया. इससे पृथ्वी के वायुमंडल में ब्रह्माण्डीय किरणों द्वारा उत्पादित विस्तृत वायु झरने की प्राकृतिक व्याख्या दी गयी. इसी अवधि के दौरान भाभा ने प्रेक्षण एवं सैद्धांतिक परिस्थितियों के शक्तिशाली विश्लेषण के साथ ''ब्रह्माण्डीय विकिरण के अंतः प्रवेशी घटक'' पर एक उल्लेखनीय अध्ययन प्रकाशित किया. उन्होंने सिद्ध किया कि ब्रह्माण्डीय किरणों के अंतः प्रवेशी घटक इलेक्ट्रॉनों के अतिरिक्त उसके समान आवेश के नए कण हैं जिनका चिह्न एवं द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन के मध्य है. भाभा ने इन नए कणों को भारी इलेक्ट्रॉन कहा जिनका द्रव्यमान, इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान की तुलना में 10-100 गुना है. इस ब्रह्माण्डीय किरण घटना-विज्ञान के प्रतिभाशाली भाग में, होमी भाभा ने नए कणों की भविष्यवाणी की. इन नए कणों को अब म्यूऑन के नाम से जाना जाता है जिनका द्रव्यमान इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान का लगभग 200 गुना है. 1938 में एंडरसन द्वारा सर्वप्रथम म्यूऑन को ब्रह्माण्डीय किरणों में प्रेक्षित किया गया. भाभा ने 1938 में मेसॉन सिद्धांत को नेचर शोध पत्रिका में प्रकाशित किया तथा बताया कि मेसॉन को उसके प्रारम्भिक आवेश पर निर्भर करते हुए स्वतःही इलेक्ट्रॉन अथवा पॉजिट्रान में क्षय हो जाना चाहिए.

(ब) भारत में किये गए कार्य :

1939 में होमी भाभा इंग्लैंड से अल्प अवकाश पर भारत में थे. सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने के कारण वह इंग्लैंड वापस नहीं जा सके. अतः उन्होंने 1940 के आरम्भ में भारतीय विज्ञान संस्थान बंगलौर में सी.वी.रमण की अध्यक्षता वाले भौतिकी विभाग की ब्रह्माण्डीय किरण इकाई में विशिष्ट अध्येता प्रभारी के रुप में शामिल होने का निर्णय किया. भाभा ने ब्रह्माण्डीय किरणों के क्षेत्र में

प्रयोगात्मक कार्य तथा इसके समांतर कण-सैद्धांतिक भौतिकी में कार्य प्रारम्भ किये. भाभा ने एक अद्वितीय गीगर-मुलर दूरदर्शी बनाया और उससे विभिन्न अक्षांशों पर संयुक्त राज्य अमेरिका वायु सेना के हवाई जहाज की सहायता से अन्तः प्रवेशी कणों की तीव्रता का मापन किया. 1943 में भाभा ने ब्रह्माण्डीय किरण झरने पर किए गए विस्तृत कार्य का प्रयोग करते हुए मेसॉन के लिए अक्षांशीय प्रभाव का अध्ययन किया. विक्रम साराभाई द्वारा भी ब्रह्माण्डीय किरणों की तीव्रता का समय परिवर्तन के साथ अध्ययन करने के लिए एक दूरदर्शी स्थापित किया गया. 1945 में भाभा ने नाभिकीय विज्ञान में मूलभूत शोध तथा देश में ब्रह्माण्डीय किरणों के क्षेत्र में प्रयोगात्मक कार्यों को बढ़ाने के लिए मुंबई में टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान (टी.आई.एफ.आर.) की स्थापना की. भाभा ने टी.आई.एफ.आर. में एक उच्च ऊंचाई अध्ययन समूह, जो कि भारत में विभिन्न अक्षांशों पर ब्रह्माण्डीय किरणों की तीव्रता को मापने हेतु गुब्बारा उड़ान प्रयोग आयोजित करते हैं, प्रारम्भ किया. इन प्रयोगों के लिये विभिन्न स्वदेशी तकनीकों जैसे गीगर-मुलर गणक का निर्माण, प्लास्टिक गुब्बारा निर्माण तकनीक, बहु अभ्र-कोष्ठ, स्पंदित इलेक्ट्रॉनिकी परिपथ तथा अंकीय अभिकलित्र इत्यादि का विकास होना आवश्यक था. इन सभी तकनीकों का विकास होमी भाभा के प्रतिभाशाली नेतृत्व में टी.आई.एफ.आर. में ही रिकॉर्ड समय में पूरा किया गया. प्रथम गुब्बारा उड़ान प्रयोग बंगलौर एवं दिल्ली के मध्य आयोजित की गयी तथा इन प्रयोगों से प्राप्त परिणामों को होमी भाभा ने 1953 में टोक्यो में सैद्धान्तिक भौतिकी पर आयोजित सम्मेलन में प्रस्तुत किया. भाभा ने 8000 फीट की ऊंचाई पर ब्रह्माण्डीय किरणों की सहायता से नाभिकीय-पायस का कार्य प्रारम्भ किया तथा 1948 में नाभिकीय उत्तेजन के साथ मेसॉन प्रकीर्णन को अंकित किया. होमी भाभा ने 1950 में कोलार-स्वर्ण क्षेत्र को गहन भूमिगत सुविधा के रुप में प्रयोग करते हुए ब्रह्माण्डीय किरणों के अध्ययन से संबंधित प्रयोग करने के बारे में भी सोचा था. यद्यपि, होमी भाभा द्वारा टी.आई.एफ.आर. को प्रमुख ब्रह्माण्डीय किरण प्रयोगात्मक कार्यक्रम के साथ प्रारम्भ किया गया था, परन्तु बाद में भारत सरकार द्वारा इसे नाभिकीय विज्ञान तथा गणित के राष्ट्रीय केन्द्र के रुप में मान्यता दी गयी. भाभा, 1945 से जनवरी 1966 में हवाई दुर्घटना में उनकी असामयिक मृत्यु तक टी.आई.एफ.आर. के संस्थापक निदेशक रहे.

प्रतिकण की अवधारणा; प्रतिपदार्थ एवं अनुप्रयोग

- दीपेन्द्र सिंह रावत, एच.सी.चन्दोला
भौतिकी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्याल, नैनीताल

प्रतिकण अर्थात एण्टीपार्टिकल हमेशा से ही सूक्ष्म जगत भौतिकी (क्वाटंम भौतिकी) के संसार में एक पहेली बना हुआ है तथा इन प्रतिकणों के व्यवहार एवं इनसे संबंधित विभिन्न पहलुओं को समझने की कोशिश में दुनियाभर के सैद्धांतिक एवं प्रयोगात्मक क्षेत्रों में कार्यरत वैज्ञानिक लगातार प्रयासरत हैं. यह सर्वविदित है कि हमारा भौतिक संसार, हम स्वयं एवं हमारे चारों ओर के परिवेश में व्याप्त सजीव एवं निर्जीव पदार्थ कुछ मूलभूत कणों से मिलकर बना है, इन मूलभूत कणों को इनकी विभिन्न प्रकृति के अनुसार कई तरीकों से वर्गीकृत किया जा सकता है. इन तरीकों के कणों के चक्रण (Spin) का आधार सर्वाधिक प्रचलित है. इन मूलकणों को इनके चक्रण के आधार पर अर्धपूर्णांक (Odd Integral Multiple) तथा पूर्णांक (Integral Multiple) चक्रण में वर्गीकृत किया गया है. अर्धपूर्णांक चक्रण वाले कण एक विशेष प्रकार की सांख्यिकी, फर्मी-डिराक सांख्यिकी, का पालन करते हैं तथा इन्हें फर्मियान कण कहा जाता है. पूर्णांक चक्रण वाले कण एक अन्य विशेष प्रकार की सांख्यिकी, बोस-आईन्सटीन सांख्यिकी का पालन करते हैं तथा इन कणों को महान भारतीय वैज्ञानिक प्रोफेसर सत्येन्द्र नाथ बोस के नाम पर बोसान कण कहा जाता है. फर्मियान के अन्तरगत सभी पदार्थ कण (जैसे इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रॉन एवं अन्य नाभिकीय कण) आते हैं, जबकि बोसान्स के अन्तरगत इन पदार्थ कणों को आपस में युग्मित करने वाले बल-वाहक कण (जैसे फोटोन, ग्लूआन W^+, W^-, Z^0, बोसोन आदि) आते हैं.

प्रकृति में मौजूद इन मूलभूत कणों के व्यवहार को कण भौतिकी के मानक प्रतिमान (Standard Model) की सहायता से समझा जा सकता है. कण भौतिकी का यह मानक प्रतिमान वर्तमान तक विकसित सर्वाधिक लोकप्रिय प्रतिमान माना जाता है. इस प्रतिमान के अनुसार ब्रह्माण्ड में व्याप्त हर एक कण का प्रतिकण अवश्य होना चाहिए तथा इन्हीं प्रतिकणों के परस्पर युग्मन से प्रतिपदार्थ का निर्माण होता है. लेकिन ये प्रतिपदार्थ संसार में कहां व्याप्त है तथा इसकी संरचना एवं अन्य गुणधर्म सामान्य पदार्थ से किस प्रकार भिन्न हैं आज भी वैज्ञानिकों एवं शोधार्थियों के लिए एक अनसुलझा प्रश्न बना हुआ है.

प्रतिकण के अस्तित्व का प्रथम अनुमान महान सैद्धान्तिक

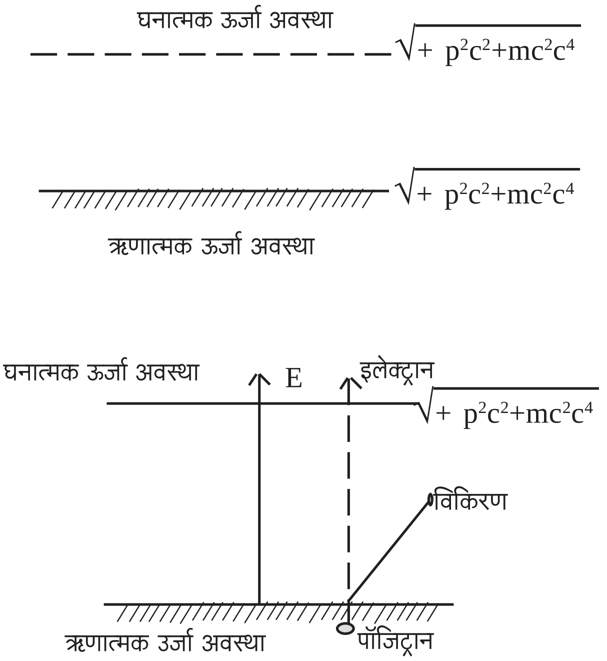

चित्र : प्रतिकण की अवधारणा का ऐख़िक निरुपण, ऋणात्मक ऊर्जा प्रतिकण के व्यवहार को प्रदर्शित करती है.

भौतिकविद प्रोफेसर पी.ए.एम. डिराक द्वारा वर्ष 1928 में किया गया. उन्होंने अर्द्धपूर्णांक चक्रण वाले कणों जैसे इलेक्ट्रॉन के व्यवहार को समझने हेतु स्वयं विकसित प्रसिद्ध डिराक समीकरण द्वारा प्रतिकण की अवधारणा को जन्म दिया. उपर्यूक्त चित्र धनात्मक ऊर्जा अवस्था, ऋणात्मक ऊर्जा अवस्था
प्रतिकण की अवधारणा का ऐखिक निरुपण, ऋणात्मक ऊर्जा प्रतिकण के व्यवहार को प्रदर्शित करती है.

समीकरण से डिराक को घनात्मक तथा ऋणात्मक ऊर्जा के रुप में दो निम्न संभव हल प्राप्त हुए.

$E = + \checkmark(P^2 C^2 + m_o C^4)$ तथा

$E = - \checkmark(P^2 C^2 + m_o C^4)$

जहाँ P इलेक्ट्रान का संवेग है, m_o इलेक्ट्रान का विराम अवस्था द्रव्यमान एवं C प्रकाश के वेग को निरुपित करता है.

समीकरण के उपरोक्त दो सम्भव ऊर्जा परिणामों ने एक नई समस्या को जन्म दिया जिसे क्वाण्टम भौतिकी के परिप्रेक्ष्य में समझना अपने आप में एक नई चुनौती थी. क्लासिकल भौतिकी (जहां न्यूटन के नियम मान्य होते हैं) में ऊर्जा प्रवाह सतत रुप में होता है, तथा घनात्मक एवं ऋणात्मक ऊर्जा स्तरों को पृथक किया जा सकता है, किन्तु ये मूलभूत कण क्लासिकल भौतिकी के नियमों को नहीं स्वीकार करते हैं तथा इनकी व्यवहार को क्वाण्टम भौतिकी के नियमों द्वारा ही समझा जा सकता है. क्वाण्टम भौतिकी में घनात्मक एवं ऋणात्मक ऊर्जा स्तरों (Energy levels) के मध्य पारगमन (transition) सम्भव होता है तथा वे अधिक समय तक अलग नहीं रह सकते. डिराक ने इस समस्या के समाधान हेतु दो निम्न सम्भावनाओं पर विचार किया.

1) ऋणात्मक ऊर्जा का कोई न कोई भौतिक महत्व अवश्य होना चाहिए.

2) सापेक्षिक क्वाण्टम यांत्रिकी (Relativistic Quantum Mechanics) एक गलत अवधारणा है.

अपने समीकरण द्वारा डिराक ने प्रथम सम्भावना पर विचार किया. समीकरण के धनात्मक ऊर्जा परिणाम को उन्होंने इलेक्ट्रान (ऋण आवेश) कण की ऊर्जा मात्रा तथा इस तथ्य द्वारा इलेक्ट्रॉन कण के व्यवहार को प्रदर्शित किया. वहीं दूसरी तरफ उन्होंने नकारात्मक ऊर्जा को इलेक्ट्रान कण के प्रतिकण जिसे पॉजिट्रान कहा गया की ऊर्जा माना तथा इस परिणाम द्वारा पॉजिट्रान कण के व्यवहार का अध्ययन किया. इस प्रकार पाल डिराक ने क्वाण्टम यांत्रिकी एवं सापेक्षिकता के सामान्य सिद्धान्त की मदद से प्रतिकण के अस्तित्व को सजीव रुप दिया. डिराक के इस अनुमान के करीब चार वर्ष बाद 1932 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रोफेसर कार्ल एंडरसन द्वारा डिराक द्वारा अनुमानित इलेक्ट्रान के प्रतिकण पॉजिट्रान की खोज ब्रह्माण्डीय किरणों (Cosmic Rays) के अध्ययन के दौरान की. इस प्रतिकण की खोज हेतु प्रो. एंडरसन एवं ब्रह्माण्डीय किरणों के खोजकर्ता प्रो. विक्टर हेंस को संयुक्त रुप से 1936 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

प्रो. डिराक को उनके अतुलनीय वैज्ञानिक योगदान हेतु प्रो. इरविन श्रोणिंतार के साथ संयुक्त रुप से वर्ष 1953 में भौतिकी के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

डिराक का प्रतिकणों से संबंधित यह सिद्धात सभी प्रकार के फर्मियान्स (पदार्थ कणों) पर लागू होता है. कण-प्रतिकण का पारस्परिक संयोजन प्रतिपदार्थ को जन्म देता है. कण भौतिकी के इसी विकास क्रम में सन 1955 में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक प्रो. आवेन केम्बरलिन तथा प्रो. इमिलिओ सेनार से प्रोटान के प्रतिकण प्रतिप्रोटान (एण्टी प्रोटान) की खोज कर भौतिकी जगत में उच्च उर्जा भौतिकी (High Energy Physics) नामक नई शाखा का सूत्रपात किया.

प्रतिप्रोटान की खोज हेतु केम्बरलिन तथा सेगर को वर्ष 1959 के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया.

उच्च ऊर्जा भौतिकी की अग्रिम यात्रा का पड़ाव प्रति न्यूट्रॉन (एण्टी न्यूट्रॉन) की खोज थी जिसकी पुष्टि प्रो. बी.कुक, प्रो.जी.आर. लेक्बर्टसन, प्रो. ओ.पीकोनी एवं प्रो. डब्ल्यू.ए.वेन्टजेल नामक वैज्ञानिकों ने 1959 में प्रति प्रोटान्स को पदार्थ से गुजारने के दौरान की.

इसी क्रम में सन 1965 में यूरोपियन रिसर्च आर्गनाईजेसन आन न्यूक्लियर रिसर्च (CERN) एवं अलटरनेटिंग ग्रेडिएट सिक्रोट्रोन (AGS) द्वारा ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला, न्यूयार्क में दो अलग अलग टीमों द्वारा एण्टीडयूट्रॉन की खोज की गई.

प्रतिकणों का ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से संबंध

ब्रह्माण्ड निर्माण के महाविस्फोट सिद्धान (Big Bang theory) के अनुसार महाविस्फोट के समय समान मात्रा में पदार्थ एवं प्रतिपदार्थ का निर्माण होना चाहिए था तथा उनका एक दूसरे को संविलियन (annihilation) होकर ऊर्जा के रुप में परिवर्तन हो जाना चाहिए. लेकिन हमारे ब्रह्माण्ड का वर्तमान स्वरुप पदार्थ अथवा द्रव्य से भरा है, जिसे पदार्थ-प्रतिपदार्थ असममिती अथवा असंतुलन (Matter-Antimatter asymmetry or imbalance) कहा जाता है. इस असंतुलन को 1967 में वैज्ञानिक प्रो. आन्द्रे शेखारोव

(Andrai Sakharov) द्वारा तीन प्रतिबन्धों, आवेश-समतुल्यता उल्लंखन (Change Parity Violation), बेरयान संख्या असंरक्षण (Baryon number non conservation) एवं तापीय असंतुलन (Thermal non equilibrium) के माध्यम से समझाया. जिनका वर्णन हम आगामी लेख में करेंगे. इन तथ्यों का विवरण लेख के अन्त में दिए गए सन्दर्भों (References) से प्राप्त किया जा सकता है.

- प्रतिपदार्थ का निर्माण ; प्रतिहाइड्रोजन

प्रतिपदार्थ निर्माण की जटिल पहेली को सुलझाने की दिशा में वैज्ञानिकों ने सर्वप्रथम प्रतिप्रोटान एवं पॉजिट्रान के युग्मन पर विचार किया. लेकिन प्रतिप्रोटान के वेग पर नियंत्रण करना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य था जिसे दूर करने में वैज्ञानिकों ने लगभग दशकों की मेहनत की. इस दिशा में CERN के वैज्ञानिकों द्वारा ALPHA नामक प्रयोग के दौरान प्रतिप्रोटान मन्दक (antiproton decelerator) द्वारा सन 2000 में प्रतिप्रोटान एवं पॉजीट्रान कणों को युग्मित कर प्रतिहाइड्रोजन के निर्माण में सफलता प्राप्त की. इस दौरान उन्हें प्रतिहाइड्रोजन के मात्र 30 परमाणुओं के निर्माण में सफलता प्राप्त हुई. उपरोक्त प्रक्रिया को निम्न समीकरण द्वारा समझा जा सकता है.

$$e^{+} + P = H + h✓$$

(पॉजिट्रान + प्रतिप्रोटान = प्रतिहाईड्रोजन + ऊर्जा)

उपरोक्त प्रक्रिया में प्रोटान वेग नियंत्रण अपने आप में एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य था जिसे बाद में CERN के वैज्ञानिकों द्वारा लगभग प्राप्त कर लिया गया किन्तु निर्मित प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं का वेग नियंत्रण भी अपने आप में एक अलग समस्या थी. इस नई समस्या के समाधान हेतु वैज्ञानिकों ने एक नई विधि विकसित की है, जिसमें उत्तेजित पॉजिट्रॉन कणों पर एण्टीप्रोटान्स की बम वर्षा द्वारा निम्न ऊर्जा प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं का निर्माण किया जा सकता है तथा इसे निम्न रुप में प्रदर्शित किया जाता है.

$$e^{+*} + P = H + e^{-}$$

इस प्रक्रिया में एण्टीप्रोटान्स के वेग नियंत्रण की समस्या नहीं रहती, जिससे तापमान संबंधी व्यवधानों से मुक्ति पाई जा सकती है.

ATRAP द्वारा किया जा रहा यह प्रयोग वर्तमान में प्रेक्षण के दौर से गुजर रहा है तथा वैज्ञानिकों को इसमें शीघ्र ही सफलता मिलने की उम्मीद है.

प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं का संसूचन (Detection)

प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं के निर्माण के साथ-साथ इनका संसूचन भी चुनौतियों से परिपूर्ण है. इस दिशा में वैज्ञानिकों ने पॉजिट्रान-प्रतिप्रोटान संविलियन द्वारा ALPHA नामक संसूचक की सहायता से प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं के संसूचन (detection) में सफलता प्राप्त की है. इसी क्रम में क्षेत्र आयनन प्रक्रिया (field ionisation process) द्वारा ATRAP उक्त प्रतिहाइड्रोजन परमाणुओं के संसूचन में सफलता प्राप्त की है.

प्रतिपदार्थ का ऊर्जा के रूप में अनुप्रयोग :

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रतिपदार्थ का निर्माण एवं भण्डारण एक बेहद चुनौतीपूर्ण कार्य है. यद्यपि प्रतिपदार्थ निर्माण एक मुश्किल कार्य प्रतीत होता है, फिर भी इसे ऊर्जा के एक वैकल्पिक स्रोत के तौर पर देखा जा सकता है. पदार्थ की तुलना में प्रतिपदार्थ काफी अधिक ऊर्जा स्रोत माने जाते हैं. यह अनुमानित है कि प्रतिपदार्थ के प्रति एकांक द्रव्यमान से उत्पन्न ऊर्जा, पदार्थ के प्रति एकांक द्रव्यमान से उत्पन्न ऊर्जा का लगभग 10 अरब गुना होता है. पदार्थ के नाभिकिय विखंडन की तुलना में प्रतिपदार्थ के नाभिकीय विखंडन से उत्पन्न उर्जा दस हजार गुना अधिक एवं नाभिकीय संलयन की दृष्टि से प्रतिपदार्थ द्वारा उत्पन्न ऊर्जा पदार्थ की तुलना में 100 गुना अधिक होती है.

एक आकर्षक आंकड़े के अनुसार प्रतिपदार्थ के 1 कि.ग्र. (1kg.) द्रव्यमान से 90 हजार खरब जूल ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है.

वर्तमान में चिकित्सा क्षेत्र में भी प्रतिकणों की अवधारणा एक मील का पत्थर साबित हुई है. पाजिट्रान इमिशन टोमोग्राफी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है. इस तकनीक द्वारा शरीर की आन्तरिक संरचनाओं के प्रतिविम्बों का अध्ययन कर विभिन्न प्रकार की बीमारियों जैसे कैंसर, टयूमर आदि के स्थाई एवं प्रभावी उपचार में मदद मिल रही है.

उपरोक्त दिलचस्प पहलुओं के बावजूद भी प्रतिकण तथा इनसे निर्मित प्रतिपदार्थ का प्रचुर मात्रा में उत्पादन वर्तमान में एक और गंभीर प्रश्न बना है. क्योंकि जिन प्रक्रियाओं द्वारा प्रतिपदार्थ का निर्माण किया जाता है उनकी दक्षता काफी कम है तथा प्रतिपदार्थ उत्पादन दर करीब 1-10 नैनोग्राम प्रतिवर्ष है. प्रतिपदार्थ उत्पादन दर बढ़ाने की दिशा में वैज्ञानिक लगातार कार्यरत है.

अन्त में एक ओर जहां प्रतिपदार्थ का निर्माण ऊर्जा संबंधित समस्याओं को दूर कर सकता है वहीं दूसरी तरफ इसके दुरुपयोग की संम्भावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता है. प्रति पदार्थ द्वारा निर्मित अस्र-शस्र संपूर्ण जीवन का कुछ ही क्षणों में सर्वनाश करने में सक्षम है, जो भविष्य में एक नया खतरा बन कर उभर सकती है. इन सब तथ्यों के अलावा प्रतिकण की अवधारणा ने सैद्धांतिक भौतिकी में कई नए प्रश्नों को भी जन्म दिया है, जिसने मुख्य रुप से

निर्वात की अब तक की चली आ रही अवधारणा को और भी जटिल बना दिया है. सैद्धांतिक उच्च ऊर्जा भौतिकी में यह एक ज्वलन्त मुद्दा है.

हम उम्मीद करते हैं कि प्रतिकण एवं प्रतिपदार्थ के क्षेत्र में चल रहे शोध कार्य भविष्य में जीव जगत की ऊर्जा संबंधी समस्याओं को समाप्त करने में सहयोगी होंगे तथा हमें अपने इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एवं वर्तमान स्वरुप से संबंधित प्रश्नों के उत्तरों के और करीब ले जायेंगे.

संदर्भ :

1. Paul Dirac The Man and His work" Edited by Peter Goddard
2. W.A.Burtche, E. Butter and M. Charton, J. Phys. B At. Mol.Opt Phys 48,25,232001 (2015)
3. S. Biswa and S. Sahoo, Ind. Ass. Phys. Tenc
4. H. Fritzsch, Elementary Particles, World Scientific.
5. https://home.corn/science/physics/antimatter.

सम्पर्क :

1. दीपेन्द्र सिंह रावत, एस.आर.एफ.भौतिकी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, ई-मेल : dsrauntphysics@gmail.com, dsrawatphysics@kunainital.ac.in
2. प्रो. एच.सी.चन्दोला, विभागाध्यक्ष, भौतिकी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल.

ग्लोबल वॉर्मिंग का पड़ने लगा धरती पर असर

नई दिल्ली, प्रेट्र : ग्लोबल वार्मिंग के कारण आर्कटिक जैसे ध्रुवीय क्षेत्रों में रहने वाले सूक्ष्मजीवों के आवास खतरे में हैं. हाल ही में प्रकाशित हुए दो अध्ययनों में शोधकर्ताओं ने बताया है कि इन क्षेत्रों में अब उष्कटिबंधीय क्षेत्रों में रहने वाले सूक्ष्मजीवों की घुसपैठ बढ़ गई है, जिसके कारण पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हो सकता है.

सेल नामक जर्नल में प्रकाशित हुए इस अध्ययन के लिए शोधकर्ताओं ने विश्व के महासागरों से 35 हजार से ज्यादा नमूने एकत्र किए. इस अध्ययन में फ्रांस के इंस्टीट्यूट डी बायोलॉजी डी ईकोल नॉर्मल सुपीरिअर (आइबीएएनएस) के शोधकर्ता भी शामिल थे. आइबीएएनएस के क्रिस बॉलर ने कहा, 'अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि पृथ्वी के महासागरों में रहने वाले सूक्ष्म जीवों की विविधता उच्च अक्षांशों (ध्रुवों के पास) पर सबसे कम है और भूमध्य रेखा के आस-पास ज्यादा है.'

दोनों अध्ययनों ने इन सूक्ष्मजीवों की विविधता का आकलन समुद्र से एकत्र किए गए नमूनों में किया, ताकि यह अनुमान लगाया जा सके कि इनका समुदाय खुद को कैसे बदलती पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुकूल कर लेता है. शोधकर्ताओं ने कहा, 'दो अध्ययनों में से एक प्लैंकटन (प्लवक) नामक सूक्ष्म समुद्री जीवों के समूहों की विविधता पर केंद्रित है और दूसरे में विश्वभर के महासागरों में सूक्ष्मजीवों के जीन की गतिविधि के पैटर्न का आकलन किया.

जिंजर ने कहा, 'अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि पूरी पृथ्वी पर पाए जाने वाले प्लैंकटन के समूहों की विविधता अक्षांशों के साथ-साथ कम होती चली जाती है. भूमध्य रेखा पर इनके समूहों की सर्वाधिक विविधता पाई जाती है, जबकि ध्रुवीय क्षेत्रों में यह काफी कम हो जाती है. इसका मुख्य कारण समुद्र का बढ़ता तापमान है. जलवायु परिवर्तन के कारण शीतोष्ण और ध्रुवीय जल में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली प्लवक मिलने की संभावना अब बढ़ गई है.'

दूसरे शोध में शोधकर्ताओं ने यह पता लगाया है कि कैसे अलग-अलग क्षेत्रों में इनकी कोशिकाएं काम करती हैं. इसमें विश्वभर के महासागरों में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों के जीनों की गतिविधियों के पैटर्न का अध्ययन किया गया है. स्विटजरलैंड के ईटीएच ज्यूरिख की शोधकर्ता और अध्ययन की वरिष्ठ लेखक शिनिची सुनगावा ने कहा, 'हमारे लिए यह निर्धारित करना ही महत्वपूर्ण नहीं है कि वहां कौन से सूक्ष्मजीव मौजूद हैं बल्कि यह पता लगाना भी जरूरी है कि वे कौन से सूक्ष्मजीव हैं जो प्रकाश संश्लेषण जैसी प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं.'

सुनगावा ने कहा कि अध्ययन के दौरान हमने कई ऐसे सूक्ष्मजीव पाए जो पृथ्वी और गर्म क्षेत्रों में रहते थे, लेकिन अब ठंडे इलाकों में भी रहने लगे हैं. इसका मतलब है कि समुद्र का परितंत्र भी लगातार बदल रहा है और सूक्ष्मजीव खुद को इसके अनुकूल बना रहे हैं.

वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता

- राधेश्याम चौबे
वैज्ञानिक अधिकारी
आरआरकैट, इंदौर

लेसर में विकिरण के उत्प्रेरित उत्सर्जन द्वारा प्रकाश का प्रवर्धन होता है. लेसर द्वारा उत्सर्जित किरण पुंज की तीव्रता बहुत ज्यादा होती है. इकाई क्षेत्रफल से निकलने वाली लेसर की शक्ति से तीव्रता की गणना की जाती है. आजकल विभिन्न प्रकार के लेसर उपलब्ध हैं. जिसमें एक्साइमर लेसर जिसका प्रयोग नेत्र रोगों के उपचार में होता है और लघुकृत कार्बन डाई आक्साइड लेसर, जिसका प्रयोग शल्य चिकित्सा में किया जाता है, प्रमुख हैं. बड़े उच्च शक्ति वाले कार्बन डाई आक्साइड लेसर का प्रयोग उद्योगों में होता है. कार्बन डाई आक्साइड लेसर भी दो प्रकार के होते हैं. पहला सतत तरंग कार्बन डाई आक्साइड लेसर और दूसरा स्पंदित कार्बन डाई आक्साइड लेसर. सतत तरंग कार्बन डाई आक्साइड लेसर में किरण पुंज, सतत रुप से निर्गत होती है. जबकि स्पंदित कार्बन डाई आक्साइड लेसर में उच्च शक्ति वाली किरण पुंज, अल्प काल के लिए निर्गत होती है. किसी भी लेसर के तीन मुख्य अवयव होते हैं.

(1) विसर्जन नलिका (2) सक्रिय माध्यम (3) अनुनादक

कार्बन डाई आक्साइड लेसर के विसर्जन नलिका में तीन गैसें कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम प्रवेश करती हैं. कार्बन डाई आक्साइड अणु का दोलनीय ऊर्जा स्तर, नाइट्रोजन अणु के दोलनीय ऊर्जा स्तर के काफी करीब होता है. विसर्जन नलिका में इलेक्ट्रान, नाइट्रोजन अणुओं से टकराते हैं, और नाइट्रोजन अणुओं को ऊर्जा प्रदान कर उत्तेजित करते हैं. इसके पश्चात उत्तेजित नाइट्रोजन अणु, कार्बन डाई आक्साइड अणुओं से टकराकर अपनी ऊर्जा कार्बन डाई आक्साइड अणुओं को दे देते हैं. फलस्वरुप कार्बन डाई आक्साइड अणु, उत्तेजित ऊर्जा स्तर में चले जाते हैं. प्रत्येक ऊर्जा स्तर का कुछ जीवन काल होता है. कार्बन डाई आक्साइड अणु उत्तेजित ऊर्जा स्तर में उस ऊर्जा स्तर के जीवन काल तक रहने के बाद, जब अपने मूल ऊर्जा स्तर में वापस लौटते हैं, तो प्रकाश का उत्सर्जन करते हैं. प्रकाश के सबसे छोटे पैकेट को फोटोन कहते हैं. कम तरंग दैर्घ्य वाले फोटोन की ऊर्जा, ज्यादे तरंगदैर्घ्य वाले फोटोन की तुलना में अधिक होती है. कार्बन डाई आक्साइड लेसर, दृश्य वर्णक्रम के बाहर अवरक्त विकिरण उत्सर्जित करता है. जिसमें दो तरंगदैर्घ्य उत्सर्जित होते हैं. पहला 9.6 माइक्रान और दूसरा 10.6 माइक्रान. 10.6 माइक्रान वाले तरंगदैर्घ्य की तीव्रता ज्यादा होती है. फलस्वरुप कार्बन डाई आक्साइड लेसर से निकलने वाली किरण पुंज में 10.6 माइक्रान वाले फोटोन का वर्चस्व होता है. कार्बन डाई आक्साइड लेसर जो एक गैस लेसर है, इसमें कार्बन डाई आक्साइड गैस और नाइट्रोजन गैसों का आंशिक दाब 1:1 के अनुपात में रखा जाता है और हीलियम गैस का आंशिक दाब इनका तीन गुना रखा जाता है. हीलियम गैस का प्रयोग शीतलन के लिए किया जाता है. हीलियम गैस ऊष्मा का सुचालक होने के कारण ऊष्मा को अवशोषित कर लेती है. जिसके परिणाम स्वरुप कार्बन डाई आक्साइड लेसर अधिक दक्षता से और अधिक समय तक कार्य कर सकता है.

सक्रिय माध्यम के रुप में कार्बन डाई आक्साइड लेसर में तीन गैसों का मिश्रण होता है. विसर्जन नलिका के इलेक्ट्रोडों पर उच्च विभव लगा कर विसर्जन नलिका में ढेर सारे इलेक्ट्रान उत्पन्न किए जाते हैं. इन इलेक्ट्रानों की ऊर्जा लगाए गये विभव के समानुपाती होती है. ये गतिशील इलेक्ट्रान नाइट्रोजन अणुओं से टकरा कर अपनी ऊर्जा नाइट्रोजन अणुओं को स्थानांतरित कर देते हैं. फलस्वरुप नाइट्रोजन अणु उत्तेजित अवस्था में आ जाते हैं. फिर उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति होती है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है.

लेसर का तीसरा अवयव अनुनादक कहलाता है.

कार्बनडाईआक्साइड लेसरों के अनुनादकों में दो दर्पण लगे रहते हैं. पहला दर्पण पूर्ण परावर्तक होता है और दूसरा शत प्रतिशत से कम परावर्तक होता है, ताकि विसर्जन नलिका से लेसर की किरण पुंज बाहर आ सके. वैसे तो पारंपरिक अनुनादकों का ही प्रयोग होता है, लेकिन प्रयोगों द्वारा यह स्थापित हुआ है कि यदि पारंपरिक अनुनादकों के बजाय वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग किया जाये तो प्रति इकाई लेसर की लंबाई से अधिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है.

रचना की दृष्टि से भी वलयाकार अनुनादकों को बनाने में किसी जटिल प्रक्रिया का पालन नहीं करना पड़ता और वे पारंपरिक अनुनादकों की तरह ही आसानी से बनाये जा सकते हैं. केवल यह ध्यान रखना है कि वलयाकार अनुनादकों की मोटाई, औसत त्रिज्या से काफी कम हो. इतना कम कि उस मोटाई को औसत त्रिज्या से सापेक्ष नगण्य माना जा सके.

वलयाकार अनुनादकों द्वारा पारंपरिक अनुनादकों की तुलना में अधिक लेसर शक्ति प्राप्त की जा सकती है. किसी भी लेसर से निकलने वाली निर्गत शक्ति, अल्प संकेत लब्धि, लेसर की लम्बाई और निष्कर्षण दक्षता पर निर्भर करती है.

वलयाकार अनुनादक द्वारा प्राप्त लेसर किरण पुंज को विवर्तनीय प्रकाशीय निकाय द्वारा सामन्य किरण पुंज में आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है. उसके पश्चात उस लेसर किरण पुंज का प्रयोग उच्च शक्ति होने के कारण पदार्थों के वेल्डिंग, कटिंग और ड्रिलिंग में किया जा सकता है. किसी भी लेसर की निष्कर्षण क्षमता उसमें प्रयुक्त अनुनादकों पर निर्भर करती है. यदि सही तरीके से अनुनादकों का निर्माण किया जाय तो लेसर की दक्षता में चमत्कारिक वृद्धि होती है. विभिन्न प्रयोगों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि पारंपरिक अनुनादकों के बजाय यदि वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग किया जाय तो लेसर से निकलने वाली शक्ति, लेसर किरण पुंज की गुणवत्ता लेसर की दक्षता में काफी वृद्धि होती है. कई देशों में जहां लेसर कार्यक्रम चल रहे हैं, वहां पर वलयाकार अनुनादकों का व्यापक प्रयोग हो रहा है. जहां तक भारत में वलयाकार अनुनादकों के प्रयोग करने की बात है, तो यह कहना समीचीन होगा कि भारत में वलयाकार अनुनादकों का लेसर में प्रयोग अभी शैशवावस्था में है. इसका मुख्य कारण है जानकारी का अभाव, जिसके चलते लेसर पर काम करने वाले कार्मिक इस नई तकनीक को अपनाने में संकोच करते हैं. वलयाकार अनुनादक की सुगम उपलब्धता पर भी कई सवाल उठाये जाते हैं. यदि अनुनादक का निर्माण करने वाली कंपनियां, वलयाकार अनुनादक के निर्माण में विशेष रुचि दिखायें तो इस समस्या से काफी हद तक निजात पाया जा सकता है. आवश्यकता इस बात की है कि निर्माण करने वाली कंपनियों के तकनीकी कार्मिकों को समुचित प्रशिक्षण दिया जाये, ताकि वे उच्च गुणवत्ता वाले दोषरहित अनुनादकों का निर्माण कर सकें. केवल तकनीकी कार्मिकों को ही नहीं, पर्यवेक्षकीय कार्मिकों को भी गहन प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है, ताकि वे अपने अधीन कार्यरत तकनीकी कार्मिकों को उचित मार्गदर्शन दे सकें और अनुनादकों की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार सुनिश्चित कर सकें. प्रथम दृष्ट्या ऐसा प्रतीत होता है कि स्वदेसी कंपनियां वलयाकार अनुनादकों के निर्माण में रुचि नहीं दिखा रही है. शायद उन कंपनियों के प्रबंधक यह सोच रहे हैं कि वलयाकार अनुनादकों को खरीदने वाले सीमित ग्राहक ही उनको मिलेंगे. इसलिए वे इसके निर्माण में रुचि नहीं दिखा रहे हैं. परिणामस्वरुप वलयाकार अनुनादकों का निर्माण बहुत कम हो रहा है और उन वलयाकार अनुनादकों की गुणवत्ता भी उतनी अच्छा नहीं है. इसलिए गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार लाने की आवश्यकता है. तभी वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग करने वाले लेसरों का निर्माण हो सकेगा. साथ ही कंपनियों को गुणवत्ता आश्वासन पर भी काफी काम करना पड़ेगा. वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता, प्रमाणित करने के लिए कई प्रयोग किये गये हैं. उदाहरण के लिए पहले एक कार्बन डाइ आक्साइड लेसर से पारंपरिक अनुनादकों का प्रयोग करके 200 वाट शक्ति प्राप्त हो रही थी. जब उस लेसर में प्रयुक्त पारंपरिक अनुनादकों को वलयाकार अनुनादकों से प्रतिस्थापित किया गया तो उसी लेसर से 350 वाट शक्ति मिली. कार्बन डाइ आक्साइड लेसर में प्रयुक्त तीनों गैसों कार्बन डाइ आक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम गैसों के आंशिक दाबों को नियंत्रित करके और शीतलन प्रदान करने वाले पानी का आयतनीय प्रवाह दर बढ़ाकर उसी लेसर से 400 वाट की शक्ति प्राप्त हुई, जो वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता को प्रमाणित करता है.

समय की मांग है कि कार्बन डाइ आक्साइड लेसरों में पारंपारिक अनुनादकों के बजाय, वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग किया जाए. लेसर किरण पुंज के गमन पथ पर किसी भी स्थान पर किरण पुंज की त्रिज्या, किरण पुंज की कटि त्रिज्या, लेसर के तरंगदैर्घ्य एवं अनुनादकों के वक्रता त्रिज्याओ पर निर्भर करती है. अनुनादकों के वक्रता त्रिज्याओं को नियंत्रित करके अपेक्षित त्रिज्या वाली किरण पुंज प्राप्त की जा सकती है. नाभि की लम्बाई, वक्रता त्रिज्या की आधी होती है.

तालिका 1

क्रम संख्या	लेसर के प्राचल
1.	लेसर की लम्बाई = 1 मीटर
2.	पहले अनुनादक की परावर्तकता = 100%
3.	दूसरे अनुनादक की परावर्तकता = 1 मीटर
4.	लेसर द्वारा उत्पन्न शक्ति = 100 वाट
5.	कार्बन डाई आक्साईड, नाइट्रोजन और हीलियम गैसों का अनुपात 1 : 1: 1
6.	कार्बन डाई आक्साइड का आंशिक दाब = 1 मिली बार
7.	नाइट्रोजन गैस का आंशिक दाब = 1 मिली बार
8.	हीलियम गैस का आंशिक दाब = 3 मिली बार
9.	सकल दाब तीनों गैसों के आंशिक दाबों का योग = 5 मिली बार
10.	किरण पुंज की गुणवत्ता = औसत
11.	प्रति इकाई लम्बाई से उत्पन्न लेसर शक्ति = 100 वाट प्रति मीटर
12.	लेसर की मूल विधा में केन्द्रित शक्ति = 80 वाट
13.	अन्य उच्चतर विधाओं में केन्द्रित शक्ति = 20 वाट

तालिका 2

क्रम संख्या	लेसर के प्राचल
1.	लेसर की लम्बाई = 1 मीटर
2.	पहले अनुनादक की परावर्तकता = 100%
3.	दूसरे अनुनादक की परावर्तकता = 80%
4.	लेसर द्वारा उत्पन्न शक्ति = 200 वाट
5.	कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम गैसों का अनुपात 1:1:3
6.	कार्बन डाई आक्साइड गैस का आंशिक दाब = 1 मिली बार
7.	नाइट्रोजन गैस का आंशिक दाब = 1 मिली बार
8.	हीलियम गैस का आंशिक दाब = 3 मिली बार
9.	सकल दाब = तीनों गैसों के आंशिक दाबों का योग = 5 मिली बार
10.	किरण पुंज की गुणवत्ता = उत्कृष्ट
11.	प्रति इकाई लम्बाई से उत्पन्न शक्ति = 200 वाट प्रति मीटर
12.	लेसर की मूल विधा में केन्द्रित शक्ति = 160 वाट
13.	अन्य उच्चतर विधाओं में केन्द्रित शक्ति = 40 वाट

यदि हम तालिका 1 और तालिका 2 का विश्लेषण करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि तालिका 2 में जिसमें वलयाकार अनुनादक का प्रयोग हुआ है, उसी लेसर से दोगुनी शक्ति प्राप्त हुई. दोनों स्थितियों में लेसर की लम्बाई 1 मीटर ही रखी गई, गैसों के आंशिक दाबों में भी कोई परिवर्तन नहीं किया गया. तालिका 1 में पारंपरिक अनुनादकों का प्रयोग हुआ है. इसमें लेसर किरण पुंज की गुणवत्ता भी कोई अच्छी नहीं है बल्कि औसत दर्जे की है. जबकि तालिका 2 में वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग हुआ है और उत्कृष्ट गुणवत्ता वाली किरण पुंज प्राप्त हुई है. बाकी प्राचल पूर्ववत रखे गये हैं. केवल अनुनादक का प्रकार बदला गया है. पहली तालिका में पारंपारिक अनुनादक का प्रयोग हुआ है. जबकि दूसरी तालिका में वलयाकार अनुनादक का प्रयोग हुआ है.

वलयाकार अनुनादक को प्रयुक्त करते हुए जो लेसर बनाये जाते हैं, उनसे और अधिक लेसर शक्ति प्राप्त की जा सकती है. पहला तो प्रयुक्त गैसें जैसे कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम के आंशिक दाबों को अनुकूलित करके. दूसरी उष्मा को शीघ्र हटाने के लिए शीतलक की आयतनीय प्रवाह दर बढ़ाकर. आयतनीय प्रवाह दर, क्षेत्रफल और प्रवाह वेग पर निर्भर करती है. आयतनीय प्रवाह दर की गणना के लिए प्रयुक्त होने वाला व्यंजक है $Q = A X V$ जहां A क्षेत्रफल और V प्रवाह वेग है.

इस व्यंजक से स्पष्ट है कि नियत क्षेत्रफल के लिए जैसे जैसे प्रवाह वेग बढ़ाया जायेगा, वैसे वैसे आयतनीय प्रवाह दर बढ़ेगी. जो अधिक ऊष्मा को हटाने में कारगर होगी. साथ ही यह भी ध्यान में रखना होगा कि विसर्जन नलिका के दोनों सिरों पर लगाये गये विद्युत विभव से उत्पन्न विद्युत क्षेत्र की तीव्रता और तीनों गैसों के आंशिक दाबों के सकल योग का अनुपात विनिर्दिष्ट सीमा में होना चाहिए. यदि लेसर की लम्बाई L मानी जाय और लेसर के दोनों सिरों पर V विभव लगाया जाय तो विद्युत क्षेत्र की तीव्रता $E=V/L$ होगी. इस विद्युत क्षेत्र की तीव्रता और गैसों के सकल दाब का अनुपात, विनिर्दिष्ट सीमा में रखा जाना चाहिए. वलयाकार अनुनादकों का निर्माण करते समय यह सावधानी रखने की आवश्यकता है कि रचित वलयाकार अनुनादक दोषरहित हों और उनमें किसी प्रकार की अपूर्णता न हो. नहीं तो इस अपूर्णता के कारण लेसर विकिरण का अवशोषण होगा. जिसके कारण ऊष्मा उत्पन्न होगी. उत्पन्न ऊष्मा वलयाकार अनुनादकों के जीवन काल पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी. इन अनुनादकों की नियमित अंतराल पर सफाई होती रहनी

चाहिए. ताकि उसके पृष्ठ पर जमा हुए धूल के कण और बाहरी जमा हुई अशुद्धियाँ हटाई जा सकें. अशुद्धिरहित होने पर वलयाकार अनुनादक के पदार्थ का अपवर्तनांक अप्रभावित रहेगा. फलस्वरुप अनुनादक की परावर्तकता अप्रभावित रहेगी. इसके कारण अनुनादक का कार्य निष्पादन अच्छा रहेगा.

वलयाकार अनुनादकों को विसर्जन नलिका के दोनों सिरों पर लगाकार और विसर्जन नलिका के दोनों सिरों पर विभव लगाकर और कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम गैसों का उचित आंशिक दाब रखकर अधिकतम शक्ति प्राप्त की जा सकती है. कार्बन डाई आक्साइड लेसर से सतत तरंग विधा में सैकड़ों किलोवाट शक्ति और स्पंदित विधा में टेरावाट शक्ति प्राप्त हुई है. कार्बन डाई ऑक्साइड का लेसर संलयन में भी प्रयोग हुआ है. कार्बन डाई आक्साइड लेसर में प्रयुक्त होने वाला नाइट्रोजन एक समनाभिकीय अणु है. इसलिए दोलकीय ऊर्जा स्तरों के बीच विकिरणीय संक्रमण, सख्ती से प्रतिबंधित है. दूसरे शब्दों में नाइट्रोजन अणु के दोलकीय ऊर्जा स्तर अर्धस्थायी हैं. वलयाकार अनुनादक लगे कार्बन डाई आक्साइड लेसर की विसर्जन नलिका के दोनों सिरों पर लगाये गए विभव और इसके परिणाम स्वरुप दी गई विद्युत शक्ति का करीब 60 प्रतिशत उच्च ऊर्जा स्तर में उत्तेजित करने के लिए प्रयुक्त होता है. 9.4 माइक्रान कार्बन डाई आक्साइड लेसर की क्वांटम दक्षता 45 प्रतिशत होती है. स्पंदित कार्बन डाई आक्साइड लेसरों में लेसर को दोलित करना शुरु करने के लिए काफी संख्या में फोटोन उत्पन्न करने में काफी समय लगता है. इसमें उत्प्रेरित उत्सर्जन काट कम होता है 10^{-12} वर्ग सेंटीमीटर से भी कम. वलयाकार अनुनादक वाले कार्बन डाई आक्साइड लेसर में हीलियम, विद्युत क्षेत्र की तीव्रता और सकल दाब (कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन और हीलियम गैसों के आंशिक दाबों का योग) को नियंत्रित करता है. इस प्रकार विसर्जन नलिका में उत्पन्न हुए विसर्जन में इलेक्ट्रान का तापक्रम नियंत्रित करता है. यदि वलयाकार अनुनादक में विधा आयतन का पता लग जाय तो हम दिये गए प्रकाशीय शक्ति को उत्पन्न करने के लिए विकिरण उत्सर्जित करने वाले परमाणुओं की संख्या का आकलन शीघ्रता से कर सकते हैं. यदि न्यूनतम बिंदू आकार, उदाहरण के लिए 0.94 मिलीमीटर लिया जाय, पहले दर्पण की वक्रता त्रिज्या अनन्त ली जाय, दूसरे दर्पण की वक्रता त्रिज्या 20 मीटर ली जाय, दोनों दर्पणों के बीच की दूरी को 1 मीटर लिया जाय तो मूल विधा के लिए विधा आयतन 1.38 घन सेंटीमीटर होगा. इस विधा आयतन से परमाणुओं की संख्या की गणना की जा सकती है. जिनका लेसर द्वारा निर्गत शक्ति में योगदान रहा है. अस्थाई अनुनादकों में ज्यादा विधा आयतन होता है और इनका इस्तेमाल उच्च लब्धि वाले लेसरों में किया जा सकता है. वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग करने वाले कार्बन डाई आक्साइड लेसर की किरण पुंज की गुणवत्ता अर्थात ऊर्जा घनत्व का मापन भी किया जा सकता है. आदर्श रुप में नाभिकीय बिन्दु में ऊर्जा घनत्व, छिद्रों के समुच्चय, जिनका आकार इतना छोटा हो कि मौलिक संरचना का विभेदन कर सके और इतना बड़ा जो लगभग सारी ऊर्जा को ले ले, से ज्ञात किया जाता है. इन छिद्रों के समुच्चय से गुजरने वाली ऊर्जा से ऊर्जा घनत्व अर्थात लेसर किरण पुंज की गुणवत्ता का मापन होता है. प्रयोगों द्वारा यह पाया गया है कि वलयाकार अनुनादक लगे लेसर किरण पुंज की गुणवत्ता पारंपारिक अनुनादक लगे लेसर द्वारा निकली किरण पुंज की गुणवत्ता से बहुत अच्छी है. यदि सक्रिय माध्यम की लम्बाई L मानी जाय और अल्फा को माध्यम की लब्धि (या अवशोषण गुणांक) माना जाय तो प्रकाशीय लब्धि L और अल्फा, दोनों पर निर्भर करेगी. वलयाकार अनुनादकों का इस्तेमाल करते हुए तीन प्रयोग किये गए. पहले प्रयोग में विसर्जन नलिका की लम्बाई 1.5 मीटर रखी गई. इस वलयाकार अनुनादक लगे कार्बन डाई आक्साइड लेसर की कुल दक्षता 11 प्रतिशत पाई गई. दूसरे प्रयोग में विसर्जन नलिका की लम्बाई 2.4 मीटर रखी गई. इस प्रयोग में वलयाकार अनुनादक वाले कार्बन डाई ऑक्साइज लेसर की कुल दक्षता 12 प्रतिशत पायी गई. तीसरे प्रयोग में विसर्जन नलिका की लम्बाई 3 मीटर रखी गई. इस वलयाकार अनुनादक वाले कार्बन डाई आक्साइड लेसर की कुल दक्षता 15 प्रतिशत पायी गई. दूसरे वलयाकार अनुनादक की परावर्तकता 95 प्रतिशत रखी गई. पहले वाले वलयाकार अनुनादक की वक्रता त्रिज्या 1 मीटर थी. दोनों वलयाकार अनुनादकों के बीच की दूरी 280 मिलीमीटर अर्थात 28 सेंटीमीटर रखी गई. इस वलयाकार अनुनादक वाले कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर की लेसर लब्धि भी मापी गई. यह पाया गया कि लेसर लब्धि, मुख्य विसर्जन शक्ति के समानुपाती है और गैसों के आंशिक दाबों के सकल योग के व्युत्क्रमानुपाती है.

वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता, कई प्रयोगों से अच्छी तरह से प्रमाणित हो चुकी है. विभिन्न प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि पारंपरिक अनुनादकों की तुलना में वलयाकार अनुनादक बहुत ही अच्छे हैं. लेसर की ज्यादा शक्ति मूल विधा में केन्द्रित होती है. गणना के अनुसार कुल लेसर शक्ति की लगभग 80 प्रतिशत शक्ति मूल विद्या में केन्द्रित होती है. दूसरे उच्चतर विधाओं में लगभग 20 प्रतिशत

शक्ति केन्द्रित होती है. दूसरी बात यह है कि मूल विधा वाले लेसर किरण पुंज का आकार गोलाकार होने के कारण उसे आसानी से केन्द्रित किया जा सकता है. मूल विधा वाले लेसर किरण पुंज की गोलीय सममितिता के कारण आसानी से केन्द्रित करके, लेसर पदार्थ संसाधन में इसका सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है. इस मूल विधा वाले लेसर किरण पुंज से पदार्थों को काटा जा सकता है. पदार्थों को जोड़ा जा सकता है. पदार्थों में छेद किया जा सकता है. संक्षेप में कहा जाय तो मूल विधा वाले लेसर किरण पुंज के कतिपय उपयोग हैं. वलयाकार अनुनादकों का प्रयोग करने वाले लेसरों की मूल विधा में, पारंपरिक अनुनादकों के सापेक्ष अधिक शक्ति निहित होती है. इसलिए जहां पर अधिक शक्ति की आवश्यकता हो, वहां पर वलयाकार अनुनादक ही एकमात्र विकल्प हैं. पहला प्रयोग किया गया जिसमें कार्बन डाई आक्साइड लेसर में पारंपरिक अनुनादक लगाये गये. कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर से निकलने वाली शक्ति का मापन किया गया. यह पाया गया कि पारंपरिक अनुनादकों का प्रयोग करने वाले लेसर से 200 वाट की शक्ति निर्गत हो रही थी.

कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर से निकलने वाली शक्ति का मापन संवेदक लेसर शक्ति मापी से किया गया. ताकि कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर से निकलने वाली शक्ति के मापन की यथार्थता सुनिश्चित की जा सके. संवेदक शक्ति मापी में 4 संवेदक लगाये गये. शक्ति मापी के परिमिति पर शीतलन के लिए पानी को जोर से प्रवाहित किया गया. ताकि कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर द्वारा उत्पन्न ऊष्मा का अवशोषण शीघ्रता से किया जा सके. कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम के अवरक्त क्षेत्र में विकिरण उत्सर्जित करता है. यह विकिरण दिखाई नहीं देता. इस विकिरण के ऊष्मीय प्रभाव का अनुभव किया जा सकता है. जैसे कि ईंट पर कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर गिरकर, ईंट में प्रयुक्त सिलिका या बालू को सेलीसिलेट में परिवर्तित कर देना. जो एक लसलसा पदार्थ है. कार्बन कागज पर गिरकर कार्बन कागज में छेद कर देना, इत्यादि. संवेदक शक्ति मापी में 4 संवेदक लगाये जाते हैं ताकि सममितिता बनी रहे. पारंपरिक अनुनादक का प्रयोग करने वाले कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर से 200 वाट की लेसर शक्ति प्राप्त हुई. जब पारंपरिक अनुनादकों को वलयाकार अनुनादकों से प्रति स्थापित किया गया तो लेसर शक्ति में अधिक बढ़ोत्तरी देखने को मिली. इस बार भी संवेदन शक्ति मापी का ही प्रयोग किया गया. संवेदक शक्ति मापी से मापन करने पर लेसर शक्ति इस बार 300 वाट प्रेक्षित हुई. यह जो 100 वाट की लेसर शक्ति में बढ़ोत्तरी प्रेक्षित हुई, वह पारंपारिक अनुनादकों को वलयाकार अनुनादकों से प्रतिस्थापित करने के कारण हुई. यह छोटा प्रयोग, वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता प्रमाणित करता है.

संवेदक शक्ति मापी में संवेदक किन स्थानों पर लगाये जाने चाहिए,यह सुनिश्चित करने के लिए, विसरण समीकरण को कार्तिकेय निर्देशांक प्रणाली में हल किया गया. इसमें संवेदक लेसर शक्ति मापी पर आपतित होने वाले लेसर विकिरण को ऊष्मा स्रोत मानकर, विसरण समीकरण को हल किया गया. संवेदक आधारित शक्ति मापी के केन्द्रक से संवेदकों की दूरी की गणना, एक संगणक प्रोग्राम जो C भाषा में लिखा गया के द्वारा की गई. इससे दूरी की गणना की यथार्थता, दशमलव के कई बिन्दुओं तक की गई, ताकि यथार्थता बनी रहे. गणना की गई दूरियों पर 4 संवेदक लगाये गये. शक्ति मापी के हर चतुष्पाद में एक संवेदक लगाया गया. ताकि सममितिता बनी रहे. लेसर विकिरण के शक्ति मापी पर आपतित होने के फलस्वरुप, संवेदकों पर उत्पन्न विभव को कार्यात्मक प्रवर्धक से प्रवर्धित किया गया. ताकि इसका मापन आसानी से हो सके. संवेदक आधारित शक्ति मापी के पृष्ठ पर एल्युमिना से ऐनोडीकृत किया गया. एल्युमिना की मोटाई 2 माइक्रान रखी गई. इस ऐनोडीकृत पृष्ठ पर लेसर किरण पुंज का अवशोषण शत प्रतिशत रहा. संवेदक आधारित शक्ति मापी के परिमिति पर शीतलन के लिए पानी को जोर से प्रवाहित किया गया. इस संवेदक आधारित शक्ति मापी का कार्य निष्पादन बहुत अच्छा रहा. अन्य शक्ति मापियों के सापेक्ष संवेदक आधारित शक्ति मापी से अधिक यथार्थता प्राप्त हुई. वलयाकार अनुनादक वाले लेसर से निर्गत शक्ति का मापन भी संवेदक आधारित शक्ति मापी से किया गया. पारंपरिक अनुनादकों का प्रयोग कर कार्बन डाई ऑक्साइड लेसर से निकली शक्ति का मापन भी संवेदक आधारित शक्ति मापी से ही किया गया. इसके परिणाम स्वरुप शक्ति मापन में अधिक यथार्थता प्रेक्षित हुई.

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वलयाकार अनुनादक अत्यधिक उपयोगी हैं. अधिक लेसर शक्ति प्राप्त करने के लिए, लेसर का कार्य निष्पादन बढ़ाने के लिए, लेसर की दक्षता बढ़ाने के लिए, वलयाकार अनुनादकों की उपयोगिता कतिपय प्रयोगों द्वारा स्थापित हो चुकी है. आवश्यकता इस बात की है कि इस नयी तकनीक को अपनाया जाय और लेसरों में पारंपरिक अनुनादकों के स्थान पर वलयाकार अनुनादक ही लगाये जायें.

अदृश्य सूक्ष्मजीवों की अद्भुत दुनिया

- मनीष श्रीवास्तव,
भोपाल (म.प्र.)

आज सूक्ष्मजीव विज्ञानियों द्वारा अपने शोधों से यह स्पष्ट किया जा चुका है कि धरती पर हर जगह मौजूद सूक्ष्मजीवों की मिट्टी के एक ग्राम में ही लगभग 10 लाख संख्या पाई जाती है. इनका आकार 2 से 5 माइक्रोमीटर के लगभग इतना नगण्य है कि इन्हें साधारण रूप से देख पाना भी असंभव है. इनकी संख्या पृथ्वी पर इतनी है कि सूक्ष्मजीवों की गिनती कर पाना नामुमकिन है. ये पृथ्वी पर मिट्टी, वायु, जल, पौधों, जंतुओं, मनुष्य, पदार्थ आदि सभी स्थानों पर मौजूद हैं. एक हयूमन प्रोजेक्ट माइक्रोबायोम के अनुसार मनुष्य के शरीर की 75 प्रतिशत कोशिकाओं में सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति होती है जिनका भार मानव शरीर के कुल वजन का लगभग 2 किलोग्राम तक होता है परन्तु इनमें से कई सूक्ष्मजीव मानव शरीर से इस तरह से सामंजस्य बनाकर चलते हैं कि ये नुकसान न पहुँचाते हुए मानव शरीर में बने रहते हैं. सूक्ष्मजीवों के संबंध में यह भी रोचक तथ्य है कि इन्हें ठंडे या गर्म स्थानों से कोई फर्क नहीं पड़ता. ऐसे स्थानों पर भी कुछ विशिष्ट प्रकार के सूक्ष्मजीव न केवल पाए जाते हैं बल्कि वृद्धि भी करते हैं. (ऐसे सूक्ष्मजीव जो प्रतिकूल पर्यावरण में भी जीवित रहते हैं उन्हें एक्सट्रीमोफाइल्स कहा जाता है.) मानव सभ्यता पर सबसे ज्यादा असर डालने वाले सूक्ष्मजीवों की खोज और आज की परिस्थितियाँ जानना बहुत ही रोचक है. यह अदृष्य जीव कैसे हमारी दैनिक दिनचर्या को प्रभावित करते हैं और कैसे आज इनका जाल दुनिया में दुगुनी तेजी से फैल रहा है.

सूक्ष्मजीवों का रोचक इतिहास

सूक्ष्मजीवों को मानव जगत से रूबरू कराने का प्रारंभिक श्रेय एक डच व्यापारी एन्टोनीवान ल्यूवेनहॉक को जाता है. सन् 1676 में एन्टोनीवान ने रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन को एक पत्र लिखकर बताया था कि उन्होंने आँखों से दिखाई न देने वाले जीवों के समुदाय को एक सूक्ष्मदर्शी से देखा है. रोचक बात यह थी कि उन्होंने स्वयं कांच को घिसकर उन्हें आपस में जोड़कर एक सूक्ष्मदर्शी बनाया था. इसी के माध्यम से उन्होंने सूक्ष्मजीवों को देखा था. प्रारंभिक जानकारी के बाद एन्टोनीवान व्यावहारिक रूप से इसे प्रमाणित नहीं कर पाए थे किन्तु उन्होंने विज्ञान की एक नई शाखा का सूत्रपात तो कर ही दिया था. इस शाखा को आगे बढ़ाया लुई पाश्चर ने. पाश्चर ने यह अवधारणा प्रस्तुत की कि कुछ मानव बीमारियों का असल कारण जीवाणु या अन्य सूक्ष्मजीव होते हैं. इस संकल्पना को 'जर्म थ्योरी ऑफ डिजीज' नाम दिया गया. किन्तु वे भी इसे अधिक प्रमाणिक रूप से सिद्ध नहीं कर पाए. पाश्चर के बाद राबर्ट कॉक वो व्यक्ति हुए जिसने सूक्ष्मजीव विज्ञान के क्षेत्र मे क्रांतिकारी कार्य किया. उन्होंने जीवाणुओं के अध्ययन की अपनी इस खोज को 'प्योर कल्चर तकनीक' का नाम दिया. इसी तकनीक के कारण जीवाणुओं का अधिक से अधिक अध्ययन संभव हो सका. पाश्चर का सिद्धान्त कि हर बीमारी के पीछे कोई सूक्ष्मजीव होता है, इसका प्रमाणिक सत्यापन भी राबर्ट ने करके दिखाया.

1876 में राबर्ट ने एक प्रयोग किया. उन्होंने एक मृत भेड़ के शरीर से जीवाणु को पृथक किया तथा उस जीवाणु को स्वस्थ जीव में प्रवेशित कराया. इसके बाद उन्होंने देखा कि कुछ समय बाद उस स्वस्थ जीव में भी वहीं लक्षण दिखाई देने लगे जो मृत भेड़ में बीमारी के समय थे. कुछ समय बाद उस जीव की भी मृत्यु हो गई. इस तरह से राबर्ट कॉक ने साबित कर दिखाया कि हर एक बीमारी के पीछे कोई न कोई सूक्ष्मजीव होता है. राबर्ट ने अपने परीक्षण से ट्यूबरकुलोसिस रोग के सूक्ष्मजीव का पता लगाकर उसे मायकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस जीवाणु नाम दिया. उन्होंने अपने जीवनकाल में कई सूक्ष्मजीवों के कारण होने वाली बीमारियों का पता लगाया. राबर्ट कॉक द्वारा उपलब्ध कराये गये सिद्धान्त के आधार पर ही आगे चलकर टायफाइड/गल्सुआ/चेचक/कालरा जैसे घातक रोगों के होने का कारण

और इसके पीछे होने वाले सूक्ष्मजीवों के बारे में वैज्ञानिक पता लगा सके. इन रोगों के कारणों का पता लगने के कारण इनकी रोकथाम पर तेजी से और प्रमाणिकता से कार्य किया जा सका. अगर इन रोगों के कारणों का पता न चलता तो आज भी न जाने कितने लोगों की जानें जा रही होती.

सूक्ष्मजीवों का विभाजन

जब यह ज्ञात हो गया कि प्रकृति में सूक्ष्मजीव हर जगह पाए जाते हैं तब अगला चरण इनके विभाजन का आया. क्योंकि अनेक प्रकार के रोग होने का कारण एक ही सूक्ष्मजीव नहीं था. इसलिये खोजों के द्वारा ज्ञात किया गया कि इनकी प्रजातियाँ भी कई प्रकार की होती है. सूक्ष्मजीव विज्ञान के विशेषज्ञों ने इन्हें निम्न प्रकार से विभाजित किया.

1. **वायरस** - यह एक अति सूक्ष्म संक्रमणकारी जीव है जो कि किसी जीवित जीव के शरीर में जीवित अवस्था में तथा शरीर के बाहर कण रूप में विद्यमान रहता है. यह मनुष्य, पादप को आसानी से रोगग्रस्त कर सकते हैं.

2. **बैक्टीरिया** - यह एककोशीय जीव मनुष्य में कई रोगों का कारण बनते हैं. कई बैक्टीरिया मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक भी होते हैं.

3. **कवक** - यह वह सूक्ष्मजीव है जो नमीयुक्त पोषक तत्वों तथा समुद्री जल पर पाया जाता है.

4. **शैवाल** - यह स्वपोशी पादप होते हैं जो तालाबों, नदियों और नम स्थानों में पाये जाते हैं.

5. **प्रोटोजोआ** - ये एककोशीय जीव है जो तालाबों, नदियों, पानी के गड्ढों तथा मिट्टी में पाए जाते हैं.

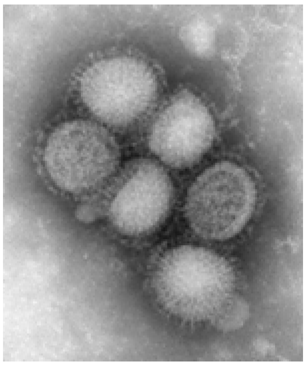

चित्रः 1 एच.एन.वायरस

चित्रः 2 मोनेरा बैक्टीरिया

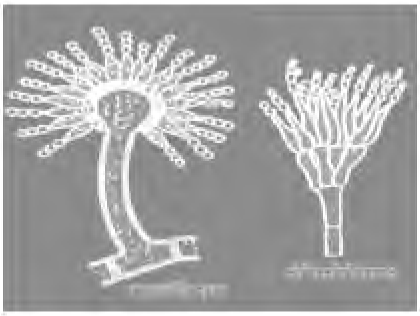

चित्रः 3 कवक की एक प्रजाति

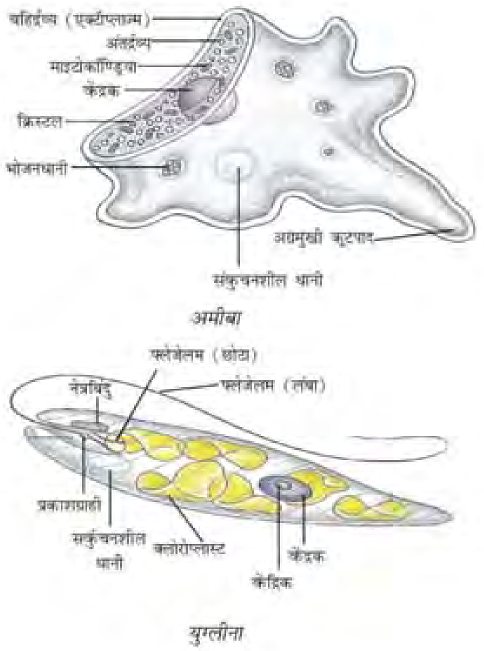

चित्रः 4 प्रोटोजोआ के प्रकार अमीबा और युग्लीना

सूक्ष्मजीव शोध विज्ञान की विविध शाखाएँ

पहले सूक्ष्मजीवों के बारे में कोई जानकारी मनुष्यों को नहीं थी पर जब वैज्ञानिकों ने इनकी खोज की तब कई रोचक तथ्य सामने आए. हर बीमारी के पीछे किसी न किसी सूक्ष्मजीव के होने का पता चला. कई ऐसे भी सूक्ष्मजीवों के बारे में जानकारी मिली जो मनुष्यों के लिए बेहद लाभदायक हैं. इनसे इकोसिस्टम को भी बहुत लाभ होता है. धीरे-धीरे सूक्ष्मजीवों के इतने प्रकार सामने आए कि यह अध्ययन का ही एक विषय बन गया. आज निम्न विज्ञान शाखाओं के अंतर्गत सूक्ष्मजीवों का अध्ययन किया जा रहा है.

- जीवाणु विज्ञान (जीवाणुओं का अध्ययन)
- विषाणु विज्ञान (विषाणु का अध्ययन)
- फाइकोलॉजी (शैवालों का अध्ययन)
- माइकोलॉजी (कवकों का अध्ययन)

मानव के दोस्त भी हैं सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीवों के संसार से जब मानव रूबरू हुआ तो धीरे-धीरे उसने जानकारियाँ जुटानी शुरू कीं. पहले तो कई बीमारियों

विषाणु से होने वाले रोग

रोग	रोगाणु नाम	रोग फैलने का माध्यम
स्माल पॉक्स	वायरोला मेजर	हवा द्वारा
चिकन पॉक्स	वैरीसेला	हवा द्वारा
हैपेटाइटिस	हैपेटाइटिस बी वायरस	दूषित जल
एड्स	एच.आई.वी	दूषित रक्ताधान/असुरक्षित यौन संबंध
खसरा	रूबोला	हवा द्वारा

बैक्टीरिया से होने वाले रोग

रोग	रोगाणु नाम	रोग फैलने का माध्यम
टाइफाइड	साल्मोनेला टाइफी	दूषित भोजन/पानी
हैजा	विब्रिओ कॉलरी	दूषित भोजन/पानी
डिफ्थीरिया	कोर्नी बैक्टीरियम डिपथीरी	हवा द्वारा
काली खाँसी	बोर्डिटेला पर्टूसिस	हवा द्वारा
टी.बी.	माइकोबैक्टिरियम ट्यूबरक़्लोसिस	हवा द्वारा

प्रोटोजुआ से होने वाले रोग

रोग	रोगाणु नाम	रोग फैलने का माध्यम
मलेरिया	प्लास्मोडियम	मादा एनाफिलीज मच्छर के काटने से
अमीबिक डिसेन्ट्री	एन्ट अमीबा हिस्टोलिटिका	दूषित भोजन/जल से

कृमियों से होने वाले रोग

रोग	रोगाणु नाम	रोग फैलने का माध्यम
फाइलेरिया	वाउचेरिया बैन्क्रोफ्टाइ	एडीज मच्छर
एस्केरिअसिस	एस्केरिस लम्ब्रीकोइड्स	दूषित भोजन/पानी

का कारण सूक्ष्मजीवों को बताया गया. वैज्ञानिकों के निरन्तर जारी प्रयोगों ने इसे सिद्ध करके दिखाया. किन्तु बाद में ऐसे भी सूक्ष्मजीवों का पता लगता गया जिनका मानव जीवन को सरल बनाने तथा लाभ पहुँचाने में अत्यधिक योगदान है. वैज्ञानिकों ने अपनी खोजों से बताया कि प्रकृति के चक्रीयकरण, नाइट्रीकरण, मानव पाचन क्रिया, दही/पनीर/चीज के निर्माण, एल्कोहल निर्माण के लिए भी सूक्ष्मजीव ही उत्तरदायी होते हैं. मानव शरीर की आहारनाल में मीथेनाजेंस, बायाफिडा बैक्टीरिया नाम के जीवाणु पाए जाते हैं. ये आपस में इस तरह से संक्रियाएँ करते हैं कि मानव का पाचन तंत्र सही रूप से कार्य कर सके. इसी तरह से मानव शरीर की प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाने में भी कई सूक्ष्मजीवों का योगदान होता है. अभी भी सूक्ष्मजीव विज्ञान के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण खोजें होना बाकी है.

सूक्ष्मजीवों से बिगड़ता पारिस्थितिक संतुलन

आज दुनियाभर में मनुष्यों और सामग्रियों के आवागमन के साथ ही सूक्ष्मजीवों का इतना द्रुत गति से आवागमन हो रहा है कि पृथ्वी पर पारिस्थितिक असंतुलन की स्थिति निर्मित हो गई है. पुरातन समय में यह स्थान परिवर्तन धीरे होता था. इस संबंध में एक चेतावनी मैक्वरी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर माइकल गिलिंग्स ने दी है कि प्रत्येक वर्ष लगभग 1.2 बिलियन अंतरराष्ट्रीय टूरिस्ट आवागमन करते हैं. इस सब से मनुष्य जिस तरह से जीवाणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैला रहा है उससे बैक्टीरियल इकोसिस्टम को बहुत नुकसान हो रहा है. इससे कई सूक्ष्मजीव विलुप्त होने की स्थिति में भी आ गये हैं. यह पर्यावरण के लिए ठीक नहीं है. प्रसिद्ध साइंस मैग्जीन में प्रकाशित एक आलेख में वैज्ञानिकों ने इस पर चिंता जताते हुए कहा है कि जैसे-जैसे हम दुनिया में बढ़ते जा रहे है. हमारे हर कदम के साथ अरबों जीवाणु या बैक्टीरिया का प्रसार भी होता जा रहा है. इनके एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने से पर्यावरण और मानव के लिए कई विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही है.

पर्वतीय कृषि और कृषि यंत्रों की ज्यामितीय वैज्ञानिकता

- कु. प्रतीक्षा जोशी
शोध छात्रा, भारतीय पेट्रोलियम संस्थान देहरादून

लोकजीव एक कृषि आधारित जीवन होता है. इसे अशिक्षित या अर्धशिक्षित जीवन माना जाता है. लोकजीवन की मान्यताओं आस्थाओं और ज्ञान विज्ञान को अभी तक वह सम्मान नहीं मिल पाया जिसका वह हकदार है. जबकि वास्तविकता यह है कि कृषि आधारित जीवन जीने वाले लोक जीवकों के जीवन में भी गणित और विज्ञान का ज्ञान गहन रूप से समाया हुआ है. जिसके लिए उनके अपने मानक और मापक है. प्रस्ततु लेख में लेखक द्वारा पर्वतीय क्षेत्र के विशेषताओं और उत्तराखंड की कृषि में वैज्ञानिकता की पड़ताल की गई है. साथ ही यहाँ के कृषि यंत्रों को ज्यामिति वैज्ञानिकता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है. लेख से यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि विज्ञान तर्क के साथ हमारी परंपराओं के साथ भी जुड़ा हुआ है. हमारे पारम्परिक कृषक भी किसी कृषि विज्ञानी से कम नहीं हैं. हमें इनके पारंपरिक ज्ञान का लाभ उठाकर इसे मानवजाति के कल्याण में लगाना चाहिए और इनके पारंपरिक ज्ञान की सहायता से कृषि यंत्रों का निर्माण करना चाहिए.

मानव जीवन और विज्ञान का संबंध उतना ही पुराना है जितना पुराना मानवीय सभ्यता है. 'विज्ञान' शब्द जो कि 'विशिष्ट ज्ञान' के लिए प्रयुक्त होता है किसी कार्य को करने की विशिष्टता की ओर इशारा करता है. ईश्वर प्रदत्त बौद्धिक शक्ति से ही मानव अपने आरम्भिक विकास क्रम में ही अन्य जीवों से विशिष्टता प्राप्त करने लगा. आग और पहिए के आविष्कार ने उसे इतनी विशिष्टता और शक्ति प्रदान की कि वह, अपने परिवेश व प्रकृति को अपने अनुकूल बनाने लगा. मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव की विज्ञान से घनिष्ठता बढ़ती गई. आज तो विज्ञान के बिना मानव अस्तित्व की कल्पना भी असंभव सी लगती है. यहाँ तक कि मानवीय भाषाओं का निर्माण भी एक वैज्ञानिक प्रक्रिया रही. लोक संस्कृतियों के उदय ने विशिष्ट ज्ञान विज्ञान के तकनीकियों को प्रश्रय दिया. जो देखने में सहज किंतु लोक जीवन को आसान बनाने वाली, उपयोगी तकनीकियां साबित हुई.

भारत एक कृषि प्रधान देश है. भारत के उत्तरी अंचल में स्थित प्रदेश उत्तरांचल के लोगों के जीवन का मुख्य आधार कृषि है. यहां पारम्परिक खेती करने की विशिष्ट विधियां फसल चक्र कृषि उपकरण तथा कृषि सम्बन्धी रस्में व त्यौहार हैं. जिनका यहाँ के समाज में विशिष्ट महत्व है. जिनको अपनाने के तार्किक और वैज्ञानिक कारण है. यहाँ के समाज में कृषि के लिए 'खेती-पाती' शब्द का प्रयोग किया जाता है.

उत्तरांचल प्रदेश 2 मंडलों में विभाजित है कुमाऊँ और गढ़वाल. दोनों अंचलों में लगभग एक जैसी कृषि व्यवस्था प्रचलित है और दोनों मंडलों की फसल और फसल चक्र भी लगभग समान है. विशेषतः पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी पारंपरिक तरीकों से खेती की जाती है. इन्हीं पर्वतीय क्षेत्रों में आज भी लोकजीवन बचा हुआ है.

यहाँ के समाज ने पारंपरिक रुप से कृषि भूमि की उत्पादकता के आधार पर यहाँ के कृषि क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित किया है -

1- तलाऊँ भूमि

2- उपराऊँ भूमि

3- इजरान भूमि

तलाऊँ भूमि : यह नदी तटों पर स्थित सिंचित भूमि है. यह सबसे अधिक उपजाऊ जमीन होती है और इसमें सबसे अच्छी श्रेणी के धान (लाल धान) की पैदावार होती है. यह भूमि सिंचाई के लिए गुल या नहरों पर निर्भर होती है. इस भूमि में गेहूँ इत्यादि अनाज भी पर्याप्त होता है. तलाऊँ भूमि साल में तीन फसल देने वाली भूमि है. इस भूमि को शेरों की भूमि भी कही जाती है. इस भूमि को स्वर्ग के समान सुख देने वाली भूमि माना जाता है.

उपराऊँ भूमि : यह सिंचाई के लिए केवल वर्षा जल पर निर्भर रहती है. किंतु मिट्टी के उर्वर होने के कारण इसमें साल में दो बार फसलें उगाई जा सकती हैं.

इजरान भूमि : इस जमीन में केवल मोटा अनाज ही उगाया जा सकता है. इसकी उत्पादकता काफी कम होती है. इसे कंटील/खेडी/उमेड़ी/उज्खेड़ी या रेतीली एवं रोखड़ की जमीन भी कहा जाता है. इसमें साल में एक ही फसल हो पाती है. जिसमें भट, सोयाबीन, गहत, अरहर, झुंगरा, मडुवा ही हो पाता है. इस जमीन में सिंचाई हेतु जल की उपलब्धता भी बहुत कम होती है. यह बलुवी एवं कंकड़-पत्थर वाली जमीन है. इस जमीन को केवल बरसात के समय ही जोता जाता है.

कृषि भूमि वर्गीकरण के प्रमुख लाभ -

- जमीन की प्रकृति के आधार पर बीज निर्धारण में सहायक.
- बीज की मात्रा प्रति नाली कृषि भूमि में खपत निर्धारण में सहायक.
- खाद की मात्रा के निर्धारण में सहायक.
- जमीन की उत्पादकता निर्धारण होने से फसल चयन में सहायक.
- जमीन की उत्पादकता के आधार पर भूमि की कीमत निर्धारण में भी सहायता मिलती है.

उत्तराखंड में मिश्रित खेती का प्रचलन है. कई प्रकार के अनाजों को एक साथ बोना और कृषि के साथ पशुपालन यहां का प्रमुख व्यवसाय है. यहां मुख्यतः तीन प्रकार की फसलें बोई जाती है.

1.रवि की फसल, 2.खरीफ की फसल, 3.जायद की फसल

रवि की फसल सितंबर-अक्टूबर के महीने में बो कर अप्रैल-मई में काटी जाती है. इसमें मुख्यतः गेहूं, चना, मटर, सरसों, अरहर-मलका आती हैं.

खरीफ की फसल बरसात के समय बोई जाने वाली फसल है इसमें मुख्य रुप से मडुवा, मक्का, चौलाई, गडेरी, अरबी, अदरक, मिर्च, गहत, सोयाबीन, उड़द, लोबिया, हल्दी, कौंणी, झुंगरा, ज्वार, ओगल, बथुआ आदि उगाया जाता है.

जायद की फसल में मुख्यतः सब्जियाँ उगाई जाती है. यह बरसात के मौसम में उगायी जाने वाली फसल है.

फसल चक्र अपनाने के कारण तथा लाभ-

लोक जीवन में अपनाए जाने वाला फसल चक्र हमारी लोक विज्ञानियों की देन है जिन्होंने विज्ञान को कभी पढ़ा नहीं बल्कि अनुभूत किया. यह केवल दस एक साल के शोध का परिणाम नहीं बल्कि पीढ़ियों और शताब्दियों के ज्ञान का संचित एवं परिष्कृत रुप है. कौन सी फसल का पौध किस समय सर्वाधिक उपयोगी होता है और किन फसलों के साथ उसकी पैदावार उसे कीड़ों से बचाएगी, इसका निर्धारण करता है फसल चक्र.

स्यारी परंपरा

आधुनिक चकबंदी से मिलती-जुलती एक परम्परा गाँव घरों में प्रचलित है जिसे स्यारी परम्परा कहा जाता है. जिसमें सारे गाँव की जमीन को दो भागों में बाँट लिया जाता है. खेतों को गाँव की स्थिति को आधार मानकर तल स्यारी (नीचे की भूमि), मल स्यारी (ऊपरी भूमि) गाँव के वल स्यारी (इस तरफ की भूमि), पल स्यारी (गाँव के उस तरफ की भूमि) में बाँट लिया जाता है. इन स्यारियों में क्रम से और रवि और खरीफ की फसलें उगाई जाती हैं. यदि एक स्यारी में रवि की फसल बोई गई है तो दूसरे में खरीफ की फसल बोई जाएगी केवल सावन भादो और असोज के महीने ही ऐसे होते हैं जिनमें दोनों स्यारियों में फसल खड़ी होती है. एक स्यारियों में धान तो दूसरे में मंडुआ, मास, भट, गहत इत्यादि.

खेतों की संरचना

पर्वतीय अंचल होने से यहाँ छोटे-चोटे जोत काटकर बनाए जाते हैं. प्रयास यह किया जाता है कि खेत अंदर की तरफ गहरा हो ताकि खेतों की उपजाऊ मिट्टी बहकर अपरदित न हो. खेतों की मेड़ों और दीवारों पर घास होती है जो कि मृदा अपरदन को रोकती है. नदी किनारे घाटियों में उपजाऊ मैदानी भाग पाया जाता है जिन्हें सेरा कहा जाता है. उनके बीच में मेड़ बना ली जाती है ताकि गूल या नहर से लाए गए पानी को खेत में सिंचाई हेतु रोका जा सके.

कृषि यंत्र

कृषि (खेती) कार्य की सफलता कृषि यंत्रों की गुणवत्ता व उपयोगिता पर निर्भर करती है. कृषि यंत्रों के कई प्रकार हैं-

1- खेत जुताई / खुदाई करने वाली यंत्र जैसे - हल, फावड़ा, कुदाल.

2- फसल की कटाई करनेवाले यंत्र जैसे- दराती, बसूला.

3- फसल की मड़ाई के यंत्र - मुंगरी, लट्ठे.

4- बीज सुखाने और छनाई करने की यंत्र - मादेरी, मटियाल, सूप.

5- बीज मापक यंत्र जैसे-मुट्ठी, माणा, सेर, नाली, पाथा, दूण, मण.

जुताई से संबंधित यंत्र

हल

उत्तराखंड के लोक जीवन में हल मात्र एक खेत जुताई का साधन नहीं वरन वह कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की रीढ़ है. प्रत्येक वर्ष यहाँ हल पूजा का त्यौहार मनाया जाता है. जिसे 'हलजोति' के नाम से पूजा जाता है. इस दिन से खेतों की जुताई काम शुरु हो जाता है. हल के निर्माण के लिए विशिष्ट प्रकार की लकड़ी का ही प्रयोग किया जाता है जो ठोस और जल्दी ना घिसने वाली, ना ही जल्दी सड़ने वाली, मजबूत और हल्की होती है. इसके निर्माण के लिए बांज, देवदार, साल, सागौन, महेल, भीमल, अमलतास वृक्ष की लकड़ी उपयोगी मानी जाती है. हल के कई भाग होते हैं. जिसमें किलड़ी, लट्ठे, निसूड़, फाल, हत्था होते हैं. एक हल को उसके लट्ठे, किलड़ियों, पचरा, निसूड़ से जोड़ने का भी अपना एक विज्ञान है. हल तथा फाल के बीच 105 अंश का कोण, हल तथा हत्थे के बीच 95 अंश का कोण, हल तथा लट्ठे के बीच 105 अंश का कोण होता है इसमें भी हल तथा फाल के बीच के कोण को पच्चरों की सहायता से 105 अंश से 130 अंश के बीच घटाया बढ़ाया जा सकता है जो कि खेत की मिट्टी की जुताई या दोहराई या बुआई के लिए गहराई के अनुरुप होता है. पारंपरिक हल के निर्माण में पूरी तरह से लकड़ी का ही प्रयोग किया जाता है. केवल हल के फाल में एक लोहे की सींक लगती है जिसे बाण कहा जाता है. हल के फाल भी तीन प्रकार के होते हैं इन्हें निसूड़ कहा जाता है. पारंपरिक फाल तीन प्रकार के होते हैं पहला एक हाथ या 18 इंच से बड़ा फाल दूसरा 18 इंच का फाल तीसरा एक जुआ फाल -बैलों और हल को जोड़ने के लिए जुआ नामक यंत्र प्रयुक्त किया जाता है. जुए की लंबाई 3 हाथ होती है. लगभग 54 इंच. जुए को नाड़े की सहायता से हल से जोड़ा जाता है. बड़े फाल का उपयोग खेत की जुताई के लिए, मध्यम आकारवाले का उपयोग दोहराई के लिए और छोटे आकार के फाल का उपयोग बुवाई के लिए किया जाता है.

जुआ -

बैलों और हल को जोड़ने के लिए जुआ नामक यंत्र प्रयुक्त किया जाता है. जुए की लंबाई 3 हाथ होती है. लगभग 54 इंच. यह पूर्णतः लकड़ी का बना हुआ यंत्र है. जुए पर रस्सी (जोत) के सहारे बैलों को जोता जाता है. जुए को नाड़े की सहायता से हल से जोड़ा जाता है.

जोल (पाटा)

जुताई के बाद मिट्टी के ढेले को तोड़ने और खेत को समतल करने के लिए जोल का इस्तेमाल किया जाता है. यह एक चौकोर लकड़ी का भारी गिल्टा होता है जो कि एक लट्ठे से जुड़ा हुआ होता है. लट्ठे पर दो किलड़ियां होती हैं. लट्ठे की लंबाई 6 हाथ होती है. जोल दोनों किनारों पर थोड़ा मोटा होता है, किनारे से 6 इंच की दूरी पर दोनों तरफ से इसे पतला कर दिया जाता है और इस का बीच का भाग 15 डिग्री के कोण तक दोनों कोनों से उठा रहता है. खेत में जुताई के बाद जोल लगाने के दो प्रमुख फायदे हैं, एक तो मिट्टी के ढेले टूट जाते हैं दूसरा बीज बोने के बाद बीज ढ़क जाता है. साथ ही खेत समतल होने से मृदा अपरदन से भी बच जाता है.

दन्याल

दन्याल यंत्र पूर्णतः लकड़ी का बना होता है. इसका उपयोग फसल की निराई-गुड़ाई व खरपतवार निकालने के लिए किया जाता है. एक दान्याल की लंबाई 2 फीट तथा चौड़ाई 6 इंच होती है. इस पर लकड़ी के बने घन होते हैं जो कि छोटे छोटे पच्चरों की सहायता से ठोके जाते हैं. 'दन्याल' के प्रत्येक धन की लंबाई 1 हाथ या 18 इंच होती है. इसमें ऊपर से पकड़ने के लिए दो हत्थे लगे हुए होते हैं. दन्याल के घन उसके मुख्य आधार से 45 डिग्री झुके हुए होते हैं. दन्याल के हत्थे अंग्रेजी के एल (L) आकार की लकड़ी से बनाए जाते हैं. दन्याल पर भी लठ् लगा होता

है दन्याल का उपयोग मुख्यतः मडुवे और धान में किया जाता है. कहीं कहीं विशेष क्षेत्र में मिर्च में भी. खेत के ऊपर जमी हुई पपडी निकालने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है. यह मिट्टी में दरारें बनाकर पौधों को हवा में मौजूद नाइट्रोजन उपलब्ध कराता है. इससे बहुत ही कम समय में खरपतवार व अधिक घने जमे पौधों को निकाल लिया जाता है. जिससे जमे हुए फसल के पौधे स्वस्थ एवं मोटे होते हैं.

कुदाल

कुदाल का उपयोग खेत खोदने, मिट्टी के ढेले तोड़ने, निराई-गुड़ाई करने, गोबर फैलाने और वह कम्पोस्ट निकालने के लिए किया जाता है. यह पारंपरिक रुप से लकड़ी के एक चौकोर एक से डेढ़ हाथ लंबे टुकड़े पर छेद कर इसमें लोहे की बनी हुई छड़ फंसा कर किया जाता है. कुदाल का सिरा उसके हत्थे से 45 डिग्री के कोण पर झुका हुआ होता है. ताकि उससे आसानी से गहरी खुदाई हो सके. ये तीन प्रकार के होते हैं-

1. बड़े-कुदाल : इसका उपयोग जमीन खोदने हेतु किया जाता है. इसके लकड़ी का हत्था एक हाथ से बड़ा होता है.

2. मध्यम कुदाल - एक हाथ के बराबर हत्थे वाला कुदाल मिट्टी के ढेले तोड़ने के लिए बनाया जाता है.

3. लघु कुदाल - एक हाथ से छोटे हत्थे वाला कुदाल केवल गुड़ाई और रोपाई में प्रयुक्त किया जाता है.

गैंती का भी प्रयोग जमीन खुदाई के लिए किया जाता है. यह विशेष गहरी खुदाई के लिए बनाया गया यंत्र है. जिसका एक सिरा नुकीला तथा दूसरा सिरा चपटा होता है. चपटा सिरा मिट्टी वाली जमीन को खोदने के काम आता है और नुकीला सिरा ठोस एवं पथरीली जमीन को खोदने के लिए काम में लाया जाता है. गैंती का नुकीला सिरा हत्थे से 75 डिग्री झुका हुआ होता है और चपटा सिरा हत्थे से 105 डिग्री विपरीत दिशा में मुड़ा होता है.

बसूला-

उत्तराखंड की पारंपरिक कृषि यंत्रों में बसूले का स्थान महत्वपूर्ण है. बसूले का प्रयोग कृषि यंत्रों के निर्माण/शिल्प कला के लिए किया जाता है. बसूला लोहे का बना हुआ (L) आकृति का यंत्र होता है जिस पर लकड़ी का हत्था लगा होता है. बसूले का वजन 1 किलो से 1.5 किलो तक होता है. बसूले का हत्था अपने आधार के साथ 60 अंश का कोण बनाता है.

बसूले दो प्रकार के होते हैं. एक बसूला बहुउद्देशीय होता है जिसे कई कामों में लाया जा सकता है. दूसरे बसूले की संरचना अंग्रेजी के उल्टे v के जैसी होता है.

इसे मंड़ाई के लिए अनाज से उसकी बालें काटकर अलग करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है. विशेष पहुंच का प्रयोग गेहूं मड़ाई के लिए किया जाता है. दूसरे प्रकार के वसूले बीच में से 45 अंश के कोण पर मुड़ा हुआ होता है.

दरांती

दरांती का निर्माण लोहे की छड़ को मोड़कर किया जाता है. दरातियों को आकार के आधार पर 3 भागों में बांटा जा सकता है. सबसे बड़ी दराती क्षेत्रीय भाषा में थमाल कहा जाता है. यह लोहे की बनी हुई भारी दराती होती है. वजन 1 किलो से अधिक होता है. इसका उपयोग मुख्यतः लकड़ी और पेड़ की मोटी टहनियों को काटने के लिए किया जाता है. मध्यम आकार की दराती पर लकड़ी का हत्था होता है और इसका उपयोग पेड़ों से चारा काटने के लिए मुख्यतः किया जाता है. लघु आकार की दराती आकार और वजन में छोटी होती है इसका उपयोग घास काटने के लिए किया जाता है.

मुंगरी और लट्ठे-

पर्वतीय कृषि में पारंपरिक रुप से अनाज मंडाई के लिए मुंगरी और लट्ठे का प्रयोग किया जाता है. या अनाज की फलियों को सुखाकर उनके ऊपर बैलों को घुमाकर भी अनाज मंडाई की जाती है. जिसे 'दैं' करना कहा जाता है. अनाज की बालों को कूटकर मड़ाई करने के लिए मुंगरी या लट्ठे का प्रयोग भी यहां काफी प्रचलित है. मुंगरी लकड़ी का बना हुआ एक डेढ़ हाथ लंबा यंत्र होता है, जो पूर्णतः लकड़ी का बना होता है. लट्ठा एक लकड़ी की छड़ है जिसकी लंबाई लगभग 5 हाथ होती है. यह मुख्यतः सोयाबीन, भट और गहत, मंडुवा की मड़ाई में काम आता है.

फसल की मड़ाई के बाद उसे साफ करने के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले यंत्रों में सूप, मटियाल और मादेरी का महत्वपूर्ण स्थान है. सूप अनाज को फटकने के काम आता है. इसकी सहायता से अनाज से भूसा और कंकड़ पत्थर अलग कर साफ किया जाता है. सूप अपने आधार से 45 अंश का कोण बनाते हुए मुड़ा होता है. सूप का निर्माण बांस से किया जाता है.

मटियार

मटियार एक लोहे के तसले के आकार के पात्र पर बीच में छोटे छोटे छेद कर बनाया जाता है. मटियाल में अनाज रखकर हिलाने से अनाज में मिले छोटे-छोटे कंकड़ पत्थर और मिट्टी मटियाल से नीचे गिर जाते हैं. यह मुख्यता

अनाज साफ करने में प्रयुक्त होने वाला यंत्र है. मदेरी मुख्यतः अनाज सुखाने में प्रयुक्त होती है. इसका प्रयोग अनाज और अनाज से भूसा अलग करने के लिए भी किया जाता है.

परंपरागत पर्वतीय कृषि में मापक यंत्र भी विशिष्ट हैं. जिनमें मुट्ठी, माणा, सेर, नाली, पाथा, दूण, कुलथा, मन प्रचलित है. इन इकाइयों के आधार पर आज भी माप की जाती है. साथ ही भूमि के नाप के लिए भी उसमें बोई जाने वाले बीज की माप के आधार पर इन इकाइयों का प्रयोग किया जाता है. इन इकाइयों को अगर ग्राम / किलोग्राम में देखें तो एक मुटी - 30 ग्राम, 1 माणा - 45 ग्राम, 1 सेर - 900 ग्राम, एक नाली - 2 किलो, पाथा - 5 माली, 1 दूण - 10 माली, कुलथा-15 नाली तथा एक मन बराबर 20 नाली होता है.

पर्वतीय कृषि यंत्रों की ज्यामितीय वैज्ञानिकता

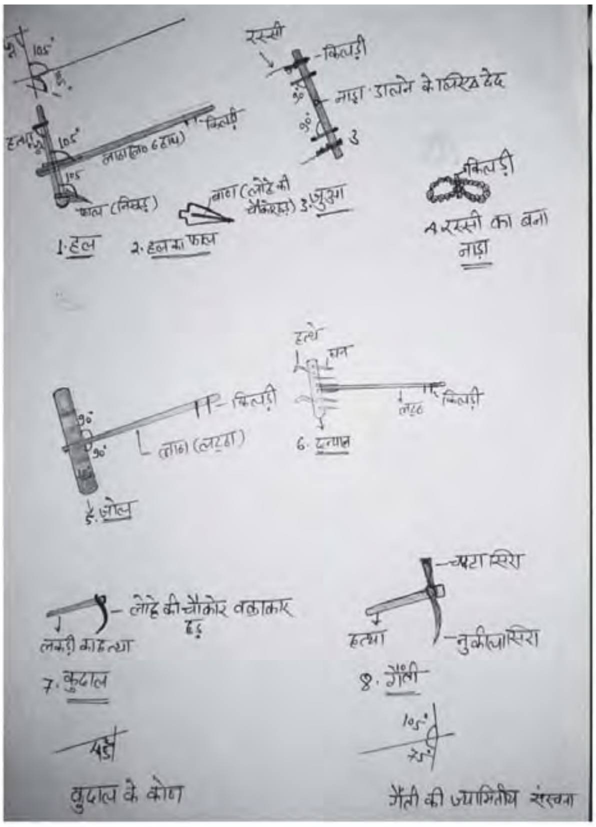

इन सभी पारंपरिक मापक यंत्रों का निर्माण मुख्यतः और लकड़ी से किया जाता है. अपवाद स्वरुप कुछ यंत्र 'पीतल', 'ताँबे', या 'कांसे' के भी मिल जाते हैं. इन सभी मापक यंत्रों की संरचना भी विशिष्ट होती है. छोटे मापक यंत्र ठोस लकड़ी से बनाए जाते हैं. बड़े मापक यंत्रों का निर्माण बाँस या रिंगाल से भी किया जाता है.

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पर्वतीय कृषि में वैज्ञानिकता और कृषि यंत्रों में ज्यामितीय वैज्ञानिकता विद्यमान है. ये यंत्र देखने में सरल किंतु निर्माण और संरचना प्रक्रिया में काफी जटिल हैं. इनके निर्माण का अपना एक व्यापक विज्ञान है. आज जब पूरा वैश्विक समाज पर्याप्त वैज्ञानिक विकास करने के बावजूद अनेक बीमारियों और मानव निर्मित समस्याओं से ग्रसित है, ऐसे समय में हमें परंपरागत ज्ञान विज्ञान और तकनीकीयों के सहारे भी मानव समाज के कल्याण के रास्ते ढूंढने चाहिए.

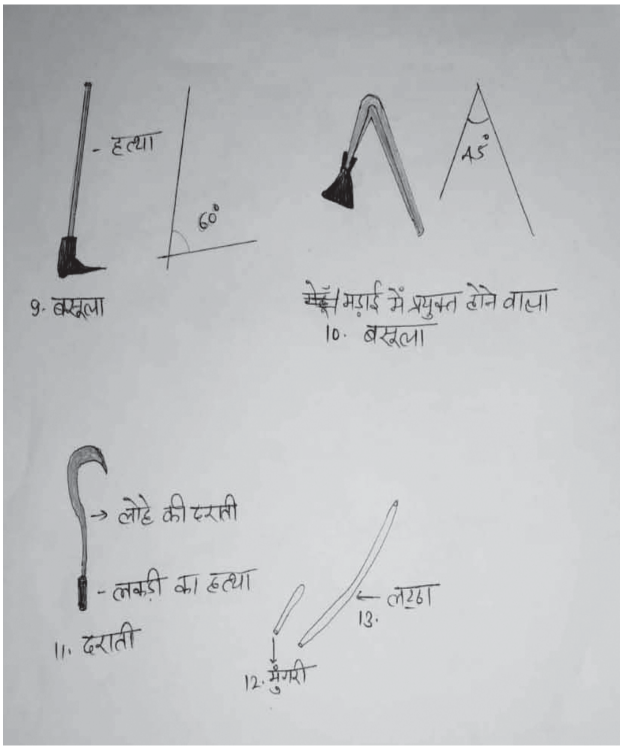

विकिरण एवं परमाणु ईंधन संविरचन सुविधा में विकिरण सुरक्षा मापन तकनीक

- नरेंद्र कुमार करनानी
वैज्ञानिक अधिकरी / जी (सेवा निवृत)
अभियांत्रिकी अभिकल्पन एवं विकास प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र

विकिरण को लेकर आम जनता के मन में कई भ्रांतियां तथा डर समाए हुए हैं.इसलिए भारत में परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों को बढ़ाने के लिए, जनता के विभिन्न समूहों के लिए तदनुसार जागरूकता का होना आवश्यक है. इसके लिए विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से विकिरण, इसके प्रभाव, अन्य जोखिम भरे पदार्थों के साथ तुलना, परमाणु ऊर्जा के सुरक्षित उपयोग की जानकारी आम जनता के लिये आवश्यक है.

परमाणु ईंधन संविरचन सुविधा में विकिरण क्षेत्र में कार्य करनेवाले कर्मचारियों की सुरक्षा के अलावा आस-पास के वातावरण की समुचित निगरानी की जाती है. यह हमारे लिये गौरव की बात है कि आज तक परमाणु ऊर्जा कार्यक्रमों से भारत में कोई उल्लेखनीय जन-हानि नहीं हुई है.

इस आलेख में विकिरण, इसके स्रोत, परमाणु ईंधन संविरचन सुविधाओं में विकिरण तथा सुरक्षा मापन तकनीक के अनुप्रयोग और पहचान का वर्णन किया गया है तथा कार्यरत मानव सुरक्षा के लिए आवश्यक उपयोगी यंत्रों के बारे में चर्चा की गई है.

(इस आलेख में प्रयुक्त शब्दों की शब्दावली इसके अंत में दी गयी हैं.)

विकिरण वातावरण में हवा के माध्यम से ऊर्जावान कणों या तरंगों का संचलन है. ये लहरें या कण, पदार्थ के साथ अपनी ऊर्जा साझाकर सकते हैं. विकिरण को गैर-आयनन और आयनन विकिरण में वर्गीकृत किया जा सकता है, जो पदार्थों पर उत्पन्न होनेवाले प्रभावों के अनुसार होता है.

गैर-आयनन विकिरण इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों जैसे पराबैंगनी प्रकाश, विकिरणी ऊष्मा, रेडियोतरंगों और सूक्ष्म-तरंगों इत्यादि से उत्सर्जित होता है. चिकित्सा संबंधी पराध्वनि और चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन (एमआरआई) भी इस श्रेणी में आते हैं.

आयननकारी विकिरण में सूर्य-ब्रह्मांडीय किरणों (मुख्य रूप से प्रोटॉन-धनात्मक आवेशित कण होते हैं, जो बहुत अधिक ऊर्जावाले होते हैं, हमारे वायुमंडल तक पहुँचते हैं) एवं रेडियोधर्मी पदार्थों से अल्फाकणों, बीटाकणों, गामा और क्ष-किरण (एक्स-रे) जैसे विकिरण के उत्सर्जन को प्राकृतिक और कृत्रिम आयननकारी विकिरण के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है.

प्राकृतिक स्रोत ब्रह्मांडीय किरणें हैं, पृथ्वी से गामा किरणें, हवा में रेडॉनक्षय उत्पाद और विभिन्न रेडियो सक्रिय-नाभिक खाद्य और पेय में स्वाभाविक रूपसे पाए जाते हैं. पृथ्वी की सतह व पृष्ठभूमि में रेडियो धर्मी पदार्थ शामिल हैं. प्राकृतिक गतिविधि से ऊर्जा पृथ्वी के आकार और आंतरिक तापमान के रखरखाव में योगदान देती है. यह ऊर्जा मुख्य रूप से यूरेनियम, थोरियम और पोटैशियम के रेडियोधर्मी समस्थानिक के क्षय से आती है.

हमारे शरीर में स्वाभाविक रूप से रेडियोधर्मी पदार्थ जैसे पोटैशियम-40, कार्बन-14 इत्यादि शामिल होते हैं. पोटैशियम-40, जो शरीर में सामान्य आहार से आता है, तथा इसका मुख्य स्रोत रेडॉन क्षय उत्पादों के आंतरिक विकिरण हैं. वायुमंडलीय किरणों के वायुमंडल के साथ परस्पर क्रिया के कारण इसमें कार्बन-14 विद्यमान होता है, जो आंतरिक विकिरण में भी योगदान देता है. पोलोनियम-210 और लैड-210 भोजन, पानी और हवा में मौजूद हैं, जो आंतरिक रूप से शरीर को विकिरणित करते हैं.

अत्यधिक ऊँचाई पर रहनेवाले लोग समुद्रीतल पर रहनेवाले

लोगों की तुलना में काफी अधिक विकिरण मात्रा प्राप्त कर सकते हैं. (वायुमंडल में प्रवेश करने वाली ब्रह्मांडीय किरणें पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से प्रभावित होती हैं. इसलिए ध्रुवों के पास विकिरण भूमध्य रेखा की तुलना में अधिक होता है). प्राकृतिक रेडियोधर्मी पृष्ठ भूमि से एक व्यक्ति द्वारा प्राप्त वार्षिक विकिरण मात्रा लगभग 2.8 मिलीसिवर्ट (mSv) है.

स्रोत	विकिरण मात्र (डोज) मिलीसिवर्ट (mSv)
प्राकृतिक	
ब्रह्मांडीय	0.4
ग्रामाकिरण	0.5
आंतरिक	0.3
रेडॉन	1.2
कृत्रिम	
भैषजिक	0.4
वायुमंडलीय परमाणु परीक्षण	0.0005
परमाणु ऊर्जा	0.0002
कुल (मिली सिवर्ट)(mSv)	0.8 (लगभग)

तालिका 1 : व्यक्ति द्वारा प्राप्त वार्षिक विकरण मात्रा

1. रेडॉन/प्राकृतिक पृष्ठभूमि विकिरण -55%

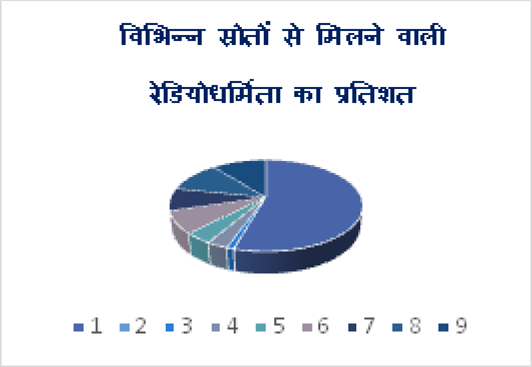

2. नाभिकीय उद्योग- 0.05 %
3. दूसरे स्रोत- >1 %
4. उपभोक्ता परिणाम- 3 %
5. नाभिकीय औषधियाँ- 4 %
6. चट्टानें और मिट्टी- 8 %
7. ब्रह्मांडीय विकिरण- 8 %
8. आंतरिक - 11 %
9. चिकित्सा एक्स-किरणें- 11 %

चित्र 1. मानव को रेडियोधर्मिता मिलने का प्रतिशत

कृत्रिम स्रोत : क्ष-किरण, औद्योगिक गामा-किरण, उत्पादो का निर्जर्मीकरण (जीवाणु-नाशन), विकिरण-विज्ञान, विकिरण-चिकित्सा, परमाणु उद्योग और अनुसंधान कृत्रिम आयनकारी विकिरण के मुख्य स्रोत हैं.

विकिरण-विज्ञान (रेडियोलोजी)

क्ष-किरण : रोगियों की जाँच के लिए क्ष-किरणों का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है. एक मशीन से निकलकर क्ष-किरणें रोगी के शरीर से गुजरती हैं. क्ष-किरणें मांस और हड्डियों में विभिन्न डिग्री से प्रवेश करती हैं और फोटोग्राफिक फिल्म पर शरीर की आंतरिक संरचनाओं की छवियाँ उत्पन्न करती हैं. इससे मिलनेवाली विकिरण की मात्रा काफी कम है.

कंप्यूटर आश्रित टोमोग्राफी क्रमवीक्षण (सीटीस्कैन) : क्ष-किरणों के पुंजको रोगी के चारों ओर घुमाया जाता है और कई संसूचकों द्वारा प्राप्त छवि को कंप्यूटर द्वारा पुनर्निर्मित किया जाता है. सी.टी. स्कैन बेहतर नैदानिक जानकारी देता है. रोगी द्वारा प्राप्त विकिरण मात्रा पारंपरिक क्ष-किरण परीक्षणों से अधिक होती है.

परमाणु चिकित्सा : रेडियोसक्रिय-नाभिक (जो गामाकिरणों को उत्सर्जित करते हैं.) के साथ अंकित क (लेबल) किए गए भैषजिक (औषध) का उपयोग निदान या चिकित्सा के लिए किया जाता है. निदान के लिए इन्हें अन्तःक्षेपण, अंतर्ग्रहण या अन्तःश्वसन द्वारा दिया जाता है. प्रदत्त रेडियो सक्रिय-नाभिक स्वाभाविक रूप से ऊतक या अंग द्वारा लिया जाता है, जिसका निदान किया जाना है. रेडियो सक्रिय-नाभिक दिए जाने के बाद, निदान के लिए ऊतक या अंग की छवि ली जाती है या विकिरण-सक्रियता (रेडियो-ऐक्टिविटी) की गणना की जाती है. इन रेडियो सक्रिय-नाभिकों की अर्धायु अल्पकालीन होती है. इसलिए रोगी द्वारा प्राप्त विकिरण मात्रा कम होती है.

विकिरण-चिकित्सा: इस विधि में रोगियों के इलाज के लिए उच्चऊर्जा क्ष-किरण, गामा-किरण, आदि के विकिरण कण-पुंज का उपयोग किया जाता है. एक कण-पुंजद्वारा रोग ग्रस्त ऊतक को उच्च खुराक (विकिरणमात्रा) दी जाती है. कण-पुंज को इस तरह से लक्षित किया जाता है कि रोगग्रस्त ऊतक उच्च खुराक प्राप्त करता है और आस-पास के स्वस्थ ऊतक प्रभावित नहीं होते हैं. विशिष्ट मामलों (जैसे अर्बुद) में कण-पुंजको कई दिशाओं से अंतर्विष्ट किया जाता है, ताकि आकस्मिक क्षति कम हो.

निकटोपचार : कुछ कैंसर उपचार के लिए, अल्पावधि लिए रोगी के शरीर में या शरीर के बाहर विकिरण स्रोत रखा जाता है. इस विधि में उच्च मात्रा में विकिरण खुराक दी जाती है. इसका उपयोग ऐसे उपचार के लिए किया जाता है, जहाँ इलाज या राहत की संभावनाएं अच्छी होती हैं और जब अन्य उपचार प्रभावी नहीं होते हैं.

विकिरण का पता लगाना

मानव अंग भौतिक मानकों जैसे गर्मी, प्रकाश इत्यादि की उपस्थिति को समझ सकते हैं, लेकिन विकिरण की उपस्थिति को देख या समझ नहीं सकते हैं. आयननकारी विकिरणों का व्यापक रूप से मानव जाति के लाभ के लिए विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जा रहा है, जैसे कि चिकित्सा, उद्योग, कृषि, अनुसंधान, इत्यादि. विभिन्न प्रकार के विकिरणों के उपयोग में वृद्धि तथा अनुप्रयोगों के कारण उपयोगकर्ताओं की सुरक्षा तथा विकिरण की मात्रा के मापन के लिए विभिन्न प्रकार के विकिरण निगरानी उपकरणों/ प्रणालियों का विकास किया गया है और उनका उपयोग किया जाता है.

अत्यधिक विकिरण मानव ऊतकों को क्षतिग्रस्त करने का कारण बन सकता है. इसलिए रेडियोधर्मी क्षेत्र में काम कर रहे कर्मियों और परमाणु ऊर्जा संयंत्र, आसपास के क्षेत्र, रेडियोधर्मी सामग्री हस्तन क्षेत्र और अन्य संबंधित सुविधाओं पर, पर्यावरण सुरक्षा के लिए नियमित निगरानी की जाती है.

मुख्य रूप से परमाणु ईंधन संविरचन सुविधाओं से तीन प्रकार के विकिरण अल्फा कणों, बीटा कणों और गामाकिरणों का उत्सर्जन होता है. सार्वजनिक क्षेत्र में अल्फा और बीटा कणों का उद्भासन नगण्य है, जब कि गामा विकिरण अनुज्ञेय सीमाओं में रखा जाता है.

विकिरण मात्रा के लिए सुरक्षित सीमाएँः

व्यावसायिक मात्रा सीमा :

किसी भी कर्मचारी का विकिरण उद्भासन निम्न लिखित सीमाओं के अंदर होना चाहिए :

प्रभावी खुराक की मात्रा : 20 मिली सिवर्ट/ वर्ष की मात्रा लगातार पांच वर्षो में औसत (पाँच साल के विसर्पी-मान पर गणना) (किसी भी वर्ष प्रभावी खुराक 30 मिली सिवर्ट से अधिक नहीं होनी चाहिए)

आंखों के लेन्स हेतु 150 मिली सिवर्ट/ वर्ष;

हाथ, पांव और त्वचा हेतु 500 मिलीसिवर्ट/ वर्ष; और गर्भावस्था के दौरान महिलाओं के भ्रूण के लिए 1मिलीसिवर्ट.

16 से 18 वर्ष की आयु के बीच प्रशिक्षुओं और प्रशिक्षुओं के व्यावसायिक जोखिम को विशेष रूप से नियंत्रित किया जाता है.

जन साधारण के लिए सीमाएँ : एक वर्ष में 1 मिलीसिवर्ट की एक प्रभावी खुराक; आंखों के लेन्स के लिए : एक वर्ष में 15 मिलीसिवर्ट तथा त्वचा के लिएः एक वर्ष में 50 मिलीसिवर्ट के बराबर की खुराक.

परमाणु ईंधन संविरचन सुविधाओं में परमाणु सामग्री का हस्तन उचित देखभाल करते हुए किया जाता है. नियामक अभिकरणों की मदद से नियमित निगरानी कार्यक्रम किए जाते हैं और रेडियो धर्मिता का स्तर सांविधिक नियंत्रणाधीन रखा जाता है. आयनकारी विकिरण के मापन के लिए, विकिरण मापनेवाले उपकरणों/ अनुवीक्षित्र की आवश्यकता होती है. सही मापांकन के लिये उपकरणों का उचित अंशांकन होना चाहिए और ये अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है. विकिरण निगरानी और निगरानी कार्यक्रम के लिए विकिरण यंत्र अति आवश्यक है.

जिन मुख्य विकिरणों का मापन एवं निगरानी की जानी चाहिए, वे हैं : अल्फा, बीटा, गामा, एक्स-किरण और न्यूट्रॉन.

क्ष-किरण को छोड़कर, अन्य सभी विकिरण नाभिकीय रूपांतरण या अनुत्तेजन के परिणाम स्वरूप नाभिक से उद्भूत होते हैं. जिन विभिन्न विकिरण स्रोतों से ये विकिरण उत्पन्न होते हैं, किसी भी भौतिक रूप में यानी ठोस, तरल या गैस हो सकते हैं, जो व्यावहारिक परिस्थितियों में मापको और जटिल बनाते हैं. कभी-कभी हम अलग-अलग परिमाण के मिश्रित विकिरण क्षेत्रों का भी सामना कर सकते हैं.

क्ष-किरण और गामाकिरणों के विकिरण, पदार्थों में एकसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं. इसलिए इन विकिरणों का पता लगाने के लिए एक समान संसूचकों का प्रयोग किया जाता है.

परमाणु संसूचक (डिटेक्टर) / संवेदक (सेंसर)

परमाणु संसूचक मुख्य रूप से रेडियोधर्मी ऊर्जा को विद्युत संकेत में परिवर्तित करता है, जो या तो बहुत कम मात्रा की धारा या कम वोल्टता का स्पंद होता है.

अदृश्य परमाणु विकिरण (अल्फा, बीटा, गामा) पदार्थ में विद्युत प्रभाव उत्पन्न करता है,जिसके माध्यम से यह गुजरता है. कितना विकिरण पदार्थ के माध्यम से गुजरा हुआ है, यह जानने के लिए इन विद्युत प्रभावों को मापा जाता है. रेडियो धर्मिता की मात्रा जानने के लिए यह बुनियादी परिचालन सिद्धांत है.

गैस भरा संसूचक

इन संसूचकों में एक धनाग्र और एक ऋणाग्र होता है, जो उपयुक्त गैस के साथ सीलबंद कक्ष में होते हैं. उपयुक्त विद्युत क्षेत्र धनाग्र और ऋणाग्र के बीच दिया जाता है. मुख्यरूप से तीन प्रकार के गैस भरे संसूचक का उपयोग किया जाता हैः

1. आयनन कक्ष

2. आनुपातिक गणित्र
3. गिगर-मुलर (जीएम) नलिका

चित्र 2 : गैस भरे संसूचक की कार्यप्रणाली

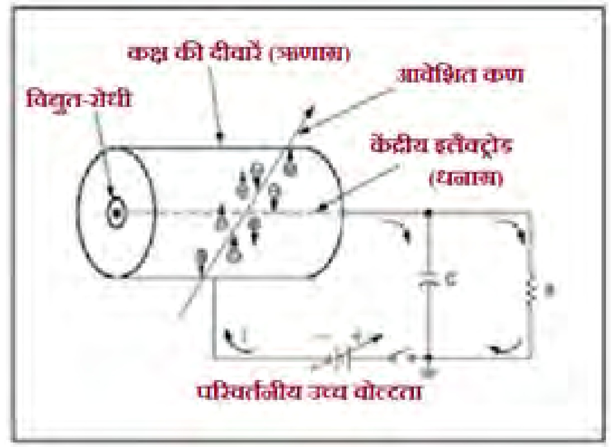

सबसे अधिक प्रयोग में लाए जानेवाला संसूचक गिगर-मुलर (जीएम) गणित्र है, जिसका प्रयोग गामाविकिरण का पता लगाने के लिए किया जाता है. इसमें एक बेलनाकार ऋणाग्र और एक पतला तार गिलास या धातु नलिका में संलग्न धनाग्र के रूप में होता है. नलिका 10 से.मी.पारा (एचजी) दबाव पर आर्गन/ नियॉन से भरी होती है.

इसका प्रचालन प्राथमिक आयनन में उत्तेजित कणों के गुणन पर निर्भर करता है, जो आने वाले विकिरण के अनुपात में वोल्टता स्पंद देता है. इन वोल्टता स्पंद की इलेक्ट्रॉनिक्स परिपथ से गणना की जाती है तथा अंशांकन करते हुए विकिरण की मात्रा दर्शाई जाती है.

प्रस्फुरण संसूचक

अच्छा प्रस्फुरित्र विकिरण ऊर्जा के बड़े हिस्से को त्वरित प्रतिदीप्ति में परिवर्तित करता है.

सबसे अधिक प्रयोग में लाए जाने वाले प्रस्फुरित्र :

ग्रामासंसूचन के लिए सोडियम आयोडाइड (थेलियम)

अल्फासंसूचन के लिए जिंकसल्फाइड (सिल्वर)

व्यवस्था इस तरह से की जाती है कि प्रस्फुरण प्रक्रिया द्वारा उत्पादित प्रकाश फोटो गुणक नलिका (पीएमटी) के ऋणाग्र पर पड़ता है. जब ऋणाग्र पर प्रकाश गिरता है, तो इलेक्ट्रॉन उत्पाझ होते हैं. चूंकि ये इलेक्ट्रॉन बहुत कम मात्रा में होते हैं.

इसलिए नि इलेक्ट्रॉनों का प्रवर्धन किया जाता है. तथा धनाग्र की ओर आकर्षित होते हुए ये इलेक्ट्रॉन उत्तेजना और आयनन के कारण उच्च गतिशील ऊर्जा प्राप्त करते हैं. पीएमटी द्वारा किए गए संकेत का प्रवर्धन 10^4 से 10^6 गुणा होता है और जब ये धनाग्र पर एकत्रित किए जाते हैं, तब धनात्मक वोल्टता वाले धनाग्र में वोल्टता ऱ्हास होता है. इस ऱ्हास को वोल्टता स्पंद के रूप में बदला जाता है. इलेक्ट्रॉनिक्स परिपथ से गणना की जाती है तथा अंशांकन करते हुए एविकिरण की मात्रा दर्शायी जाती है.

चित्र 3 : प्रस्फुरण संसूचक कार्य-प्रणाली

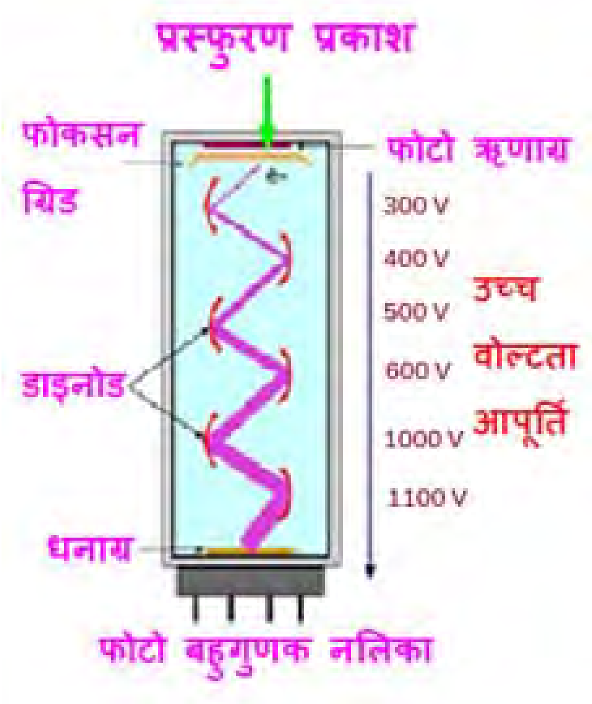

फोटो ऋणाग्र	प्रस्फुरित प्रकाश को इलेक्ट्रॉन में परिवर्तित करता है.
फोकसनग्रिड	इलेक्ट्रॉनों को केंद्रित करने वाला ग्रिड
डाइनोड	इलेक्ट्रॉनों को उत्तेजित करने के लिए.
धनाग्र	उत्तेजित इलेक्ट्रॉनों को प्राप्त करता है.

तालिका 2 : फोटो गुणक नलिका (पीएमटी) के घटक

ठोस - अवस्था (सोलिड-स्टेट) संसूचक :

एक विशे, रूप से निर्मित डाइनोड (मुख्य रूप से सिलिकॉन) का उपयोग संसूचक के रूप में किया जाता है. इसे उत्क्रम विद्युत क्षमता (रिवर्सबायस्ड) में संचालित किया जाता है, जो अवक्षयन क्षेत्र बनाता है. जबकि किरण इस अवक्षयन क्षेत्र में प्रवेश करता है. तो यह इलेक्ट्रॉन रिक्तियुग्म पैदा करता है, जिसके परिणाम स्वरूप आवेश (चार्ज) का उत्पादन होता है. इस ावेश की मात्रा रेडियोधर्मिता के अनुसार होती

है. इस आवेश के परिणाम का निर्धारण करके रेडियो धर्मिता के मापन का पता लगाया जाता है.

सामान्य परमाणु उपकरण

चित्र 4 : परमाणु उपकरण की कार्य प्रणाली

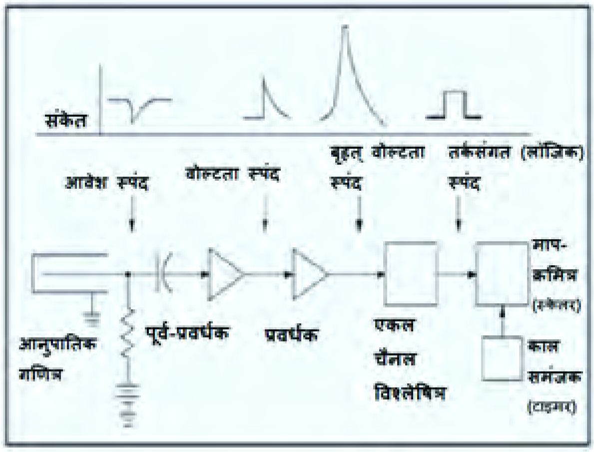

संसूचक द्वारा प्राप्त स्पंद को विभिन्न चरमों में प्रवर्धक द्वारा प्रवर्धित किया जाता है. प्राप्त स्पंदों का आकार अलग-अलग होने के कारण गणना में त्रुटि हो सकती है.इसलिए इन्हें समान आकार (आयाताकार) में परिवर्तित किया जाता है. इन स्पंदों की उचित इकाई में पूर्व निर्धारित समय में गणना करके मात्रा दर्शायी जाती है. मात्रा के अधिक होने पर सचेत कब जाकर चेतावनी भी दी जाती है.

नाभिकीय पदार्थों का उपयोग परमाणु ईंधन के अतिरिक्त अन्य उद्योगों में भी किया जाता है :

- सामग्री की मोटाई मापन के लिए नाभिक प्मापी.
- तरल पदार्थ की प्रवाह दर.
- थोक टंकी में सामग्री का स्तर.
- धातुओं और झालन की गुणवत्ता की जांच करने के लिए.
- भूमिगत पेट्रो-रासायनिक पाइप-लाइनों में रिसाव की जांच करने के लिए
- कुछ चिकित्सा आपूर्ति का निर्जर्मीकरण (जीवाणु नाशन)
- प्याज और आलू जैसे खाद्य पधार्थों की विकिरण के द्वारा निधानी आयु बढ़ाना.

इत्यादि.

परमाणु ईंधन संविरचन सुविधाओं में विकिरण का पता लगाने और मापने के लिए अनुवीक्षित्र :

- गामा सर्वेक्षण मापी.
- गामा मात्रा मापी.
- गामा क्षेत्र अनुवीक्षित्र.
- विकिरण संदूषण अनुवीक्षित्र.
- विकिरण गणन प्रणाली.
- हाथ, पैर और कपड़ों में विकिरण संदूषण अनुवीक्षित्र.
- क्रांतिकता अनुवीक्षित्र.
- वायु में विकिरण अनुवीक्षित्र.

उपर्युक्त सूची में क्रांतिकता अनुवीक्षित्र (क्रिटिकेलिटीमॉनीटर) एवं वायु में विकरण अनुवीक्षित्र परमाणु ईंधन संविरचन सुविधाओं के लिए अत्यंत आवश्यक उपकरण है. क्रांतिकता अनुवीक्षित्र बहुत कम सयम (< 250 मिलीसेकंड) में आकस्मिक गामा में वृद्धि (10^3 गुणा) का पता लगाकर चेतावनी देता है.

वायु में विकिरण मॉनीटर प्रयोग शाला में अत्यंत छोटे अल्फा कणों (0.1 माइक्रोन आकार) का पता लगाकर सावधान करता है.

इन सब उपकरणों का उपयोग नियामक बोर्ड द्वारा जारी आदेशानुसार सुरक्षा की दृष्टि से वांछनीय है. इन उपकरणों का समुचित रखरखाव एवं अशांकन करके कर्मचारी वर्ग तथा संयंत्र सुरक्षा का पालन करते हैं.

संदर्भ :

1. कॉन्फ्रेस : बीटीडीआरआई-2013 गोरखपुर, न.कु.करनानी-एट.आल
2. चित्र 2,3, 4, एवं तालिका-1, चित्र-1 के आंकड़े - सभार गूगल
3. विकिरण मात्रा के लिए सुरक्षित सीमाएं परमाणु ऊर्जा नियामक परिषद की वेबसाइट से
4. प्रयुक्त शब्दावली - डॉ.रश्मिवार्ष्णेय, उपनिदेशक (राजभाषा) हिंदी अनुभाग, भा.प.अ.केंद्र

इस आलेख में प्रयुक्त शब्दों की शब्दावली

हिंदी शब्द	अंग्रेजी पर्याय
अंकितक	लेबल
अंतर्ग्रहण	इंजेस्शन
अंतःक्षेपण	इंजेक्शन
अंतःश्वसन	इनहेलेशन
अंशांकन	केलिब्रेशन
अंशांकनकरना	केलिब्रेट
अभिकरण	एजेंसी
अनुत्तेजन	डि-एक्साइटेशन
अनुवीक्षित्र	मॉनीटर
अर्धायु	हाफलाइफ
अर्बुद	ट्यूमर
अवक्षयन	डिप्लीशन

आनुपातिकगणित्र	प्रोपोरशनलकाउंटर
आयननकक्ष	आयोनाइजेशनचैंबर
आवेश	चार्ज
इलेक्ट्रॉनरिक्तियुग्म	इलेक्ट्रॉनहोलपेयर
उत्क्रम	रिवर्स
उद्भासन	एक्सपोजर
ऋणाग्र	केथोड
एकलचैनलविश्लेषित्र	सिंगलचैनलएनालाइजर
कंप्यूटर आश्रित टोमोग्राफी क्रमवीक्षण	सी.टी.स्कैन
कक्ष	चैंबर
कण-पुंज	बीम
क्रांतिकता	क्रिटिकेलिटी
कालसमंजक	टाइमर
क्ष-किरण	एक्स-रे
गणनप्रणाली	काउंटिंगसिस्टम
चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन	एम.आर.आई.
झालन	वेल्ड
टंकी	टैंक
ठोसअवस्था	सोलिडस्टेट
धनाग्र	एनोड
धनात्मक	पॉजिटिव
धारा	करेंट
नलिका	ट्यूब
निकटोपचार	ब्रैचीथेरेपी
निधानीआयु	शेल्फएज
निर्जर्मीकरण जीवाणु-नाशन)	स्टेरलाइजेशन
न्यूक्लियस	नाभिक
पराध्वनि	अल्ट्रासाउंड
पराबैंगनी	अल्ट्रा-वायोलेट
परिपथ	सर्किट
परिवर्तनीय	वेरिएबल
पारा	मर्करी
पूर्व-प्रवर्धक	प्री-एम्प्लीफायर
प्रचालन	ऑपरेशन

प्रतिदीप्ति	फ्लोरोसेन्स
प्रभावी	इफेक्टिव
प्रमापी	गेज
प्रवर्धक	एम्प्लीफायर
प्रस्फुरण	सिंटिलेशन
प्रस्फुरित्र	सिंटिलेटर
फोकसन	फोकसिंग
भैषजिक	फार्मास्यूटिकल
मात्रा	डोज़
मात्रामापी	डोजिमीटर
मापी	मीटर
वायु	एयर
विकिरण-सक्रियता	रेडियो-ऐक्टिविटी
विकिरणी	रेडिएन्ट
विद्युत	इलेक्ट्रिक
रासायनिक	केमिकल
रूपांतरण	ट्रांसफोरमेशन
रेडियोसक्रिय-नाभिक	रेडियो-न्यूक्लाइड
विकिरण-चिकित्सा	रेडियोथेरेपी
विकिरण-विज्ञान	रेडियोलॉजी
विद्युत-रोधी	इनस्यूलेटर
विसर्पी-मान	स्लाइडिंगस्केल
वोल्टता	वोल्टता
व्यावसायिकमात्रासीमा	ओक्यूपेशनलडोज़लिमिट
संकेत	सिगन्ल
संदूषण	कंटामिनेशन
संविरचन	फेब्रीकेशन
संवेदक	सेंसर
संसूचक	डिटेक्टर
संसूचन	डिटेक्शन
सचेतक	अलार्म
समस्थानिक	आइसोटोप
सूक्ष्म-तरंग	माइक्रोवेव
स्पंद	पल्स
हस्तन	हैंडलिंग

चार्ल्स डार्विन और अल्फ्रेड वाल्लेस - प्राकृतिक चयन का सिद्धांत

- सुप्रीत सैनी,
आई. आई. टी. बौम्बे, मुम्बई
ईमेलः saini@che.iitb.ac.in

इस कहानी के तीन पात्र है - तीनो इंग्लैंड से हैं, और तीनो 19वीं सदी के हीरो हैं. इनमें से एक - चार्ल्स डार्विन - का नाम, मुझे यकीन है आप सबने सुना होगा; पर बाकी दो इतिहास के पन्नें में कहीं लुप्त होकर रह गए. इस कहानी की मदद से मैं 150 साल से भी पुरानी इस कहानी को फिर ताज़ा करना चाहता हूं.

शुरुआत करते हैं1840 के दशक से - अल्फ्रेड वाल्लेस और विलियम बेटस नाम के दो दोस्त इंग्लैंड में थे. दोनो में एक धुन सवार थी. एक प्रश्न का उत्तर खोजने की धुन. वह प्रश्न यह था कि प्रकृति में करोड़ों तरीके के जीव-जंतु हैं, ये सब आते कहां से हैं? तबकी दुनिया अब से थोड़ा अलग थी. सामान्य ज्ञान यही था, कि जीव-जंतु सब इश्वर ने बनाये हैं, और धरती पर रख दिए हैं. यह जीव-जंतु हमेशा से अपने अभी दिखनेवाले रूप में ही रहे हैं. पर वाल्लेस और बेटस इस जवाब से संतुष्ट नहीं थे. दोनो ने निर्णय लिया कि जवाब की खोज में वह दक्षिण अमरीका के महाद्वीप जाएंगे और वहां के जंगलों मे प्रकृति के करीब रहकर सवाल का जवाब ढूंढेंगे.

19वी सदी में विज्ञान को जीवन समर्पित कर पाना अमीरों का खेल था. एक सामान्य, माध्यमवर्गीय इंसान इस दिशा में अपना जीवन नहीं बिता सकता था. पर वाल्लेस ऐसे नहीं थे - उनके पास कोई ख़ास पुश्तैनी जायदाद नहीं थी. अपनी वैज्ञानिक खोज के दौरान दुर्लभ चीजें ढूंढ, उन्हें संग्रहालयों या अमीरों को बेच वो अपना विज्ञान का शौक पूरा करते थे. पर दक्षिण अमरीका का भ्रमण कुछ ख़ास नतीजा नहीं लाया. दोनो दोस्तों ने कुछ साल साथ काम किया और उसके बाद, शायद आपसी मतभेद के कारण अलग-अलग काम करने को राज़ी हो गए. बेटस वहां एक लंबा अरसा रहे, पर वाल्लेस ने निर्णय लिया और 1852 में वापस इंग्लैंड लौटने के लिए उन्होंने जहाज पकड़ा. अपने हज़ारों एकत्रित किये नमूनों के साथ वह वापस आ रहे थे जब उनका जहाज, ठीक महासागर के बीच में, एक आग का शिकार हो गया. जान तो बच गयी, पर साथ लाई एक-एक चीज़ तहस-नहस हो गयी. वर्षों की मेहनत पर पानी फिर गया और इस कारण जब 10 दिन बाद एक छोटी सी नाव पर रहते वाल्लेस को एक नज़दीक से गुज़रते जहाज ने बचाया, तो वाल्लेस ने एक निर्णय लिया, 'वो अब पानी से कभी यात्रा नहीं करेंगें. हताश वाल्लेस 1852 में किसी तरह जान बचाकर इंग्लैंड वापस पहुंचे.

पर मनुष्य भी एक अजीब सा जानवर हैं. जिद्दी है, हठी है और पथ पढ़कर उसे भूलने में उस्ताद हैं. अभी लौटे कुछ एक साल भर ही हुआ था कि वाल्लेस को एक प्रस्ताव आया. इस बार एशिया और ऑस्ट्रेलिया के बीच के द्वीपों पर जाकर वहां से जीवों के नमूने ढूंढ इंग्लैंड भेजने थे. उनके अंदर का वैज्ञानिक इस सुनहरे मौके को टाल ना पाया और वो राजी

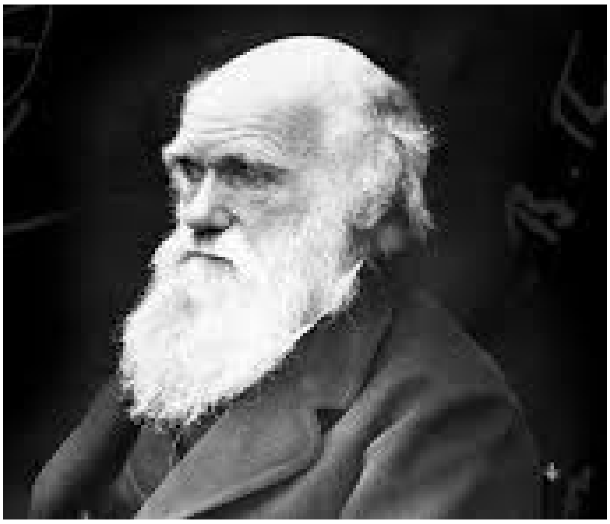

हो गए. साथ ही, उन्होंने सोचा कि यह एक सुनहरा मौका होगा अपने पुराने प्रश्न पर फिर से काम करने का पर इस बार जाने से पहले उन्होंने इग्लैंड के जानेमाने प्रकृतिवादी चार्ल्स डार्विन से मिलना उचित समझा. डार्विन से मिलकर उन्होंने अपनी आने वाली यात्रा और वैज्ञानिक दिलचस्पी के बारे में बताया. डार्विन युवक से बहुत प्रभावित हुए और जब वाल्लेस ने उन्हें बताया कि वह जीवों के बनने के बारे में अध्ययन करना चाहते हैं और क्या डार्विन, समय-समय पर उनकी खोजों पर अपनी टिप्पणी देने को राजी होंगे, तो डार्विन तत्पर राजी हो गए. वाल्लेस बहुत खुशी से द्वीपों पर गया. वह नहीं जानता था कि जीव-जंत् कहां से आते हैं, इस प्रश्न का जवाब डार्विन लगभग 15 साल पहले ही दे चुके हैं. डार्विन ने यह जवाब तब तक दुनिया के साथ नहीं बांटा था. उस समय तक, वह जवाब उनकी लिखी कापियों में कैद थे.

डार्विन का जन्म 1809 में हुआ. डाक्टरी, चर्च का पादरी और डॉक्टर बनने की नाकाम कोशिशों के बाद वो जीवन से उलझ रहे थे, जब 1831 में उनके पास एक मौका आया. इस मौके ने ना केवल उनका जीव विज्ञान का पूरा इतिहास बदल दिया. मौका था 'बीगल नाम के एक जहाज पर 6 महीने तक रहना और दुनिया का एक चक्कर लगाना. जहाज के कप्तान फिट्जरॉय को एक साथी की जरूरत थी, और इधर उधर पूछने पर उन्हें डार्विन का नाम सुनने में आया. परिवार से लड़कर डार्विन जहाज पर जाने को राजी हो गए. 6 महीने की ये दूरी, 5 साल में तय हुई और इन पांच सालों में डार्विन ने दक्षिण अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया जैसी जगहों पर बेशुमार जीवों की बहुत बारीकी से पढ़ाई की. नतीजा यह हुआ की जब वह वापस इंग्लैंड आये, तो उन्हें लगा जैसे कि उन्होंने जो कुछ देखा वो उन्हें प्रकृति के राज खोलने की गुथी दे रहा था. यात्रा शुरू होने पर जब जहाज महासागर में पहुंचा तो डार्विन ने बेहद खूबसूरत जीव देखें. मगर वह समझ नहीं पाए कि ईश्वर ने इतनी सुंदर रचनाएं बनाकर समुद्र के बीच क्यों डाल दी, जहां उन्हें सराहने वाला कोई नहीं था. जब वह अपने सफर के पहले पड़ाव पर पहुंचे तो अक्सर मीलों तक घुमते और जगह जगह के जीवों का अध्ययन करते. जहां भी जाते उन्हें एक चीज हमेशा दिखती - जहां जहां जैसे रूप के जानवर थे, वहां पत्थरों में जीवाश्म उस जगह के वर्तमान के जानवर जैसे दिखते थे. चाहे उनका आकार अलग हो, पर शरीर का ढांचा समान होता. डार्विन को इससे यह अहसास हुआ कि किसी भी जगह में, आज के रहने वाले जीवों का उसी जगह पर लाखों साल पहले रहने वाले जीवों से जरूर कोई रिश्ता है. डार्विन इस अवलोकन

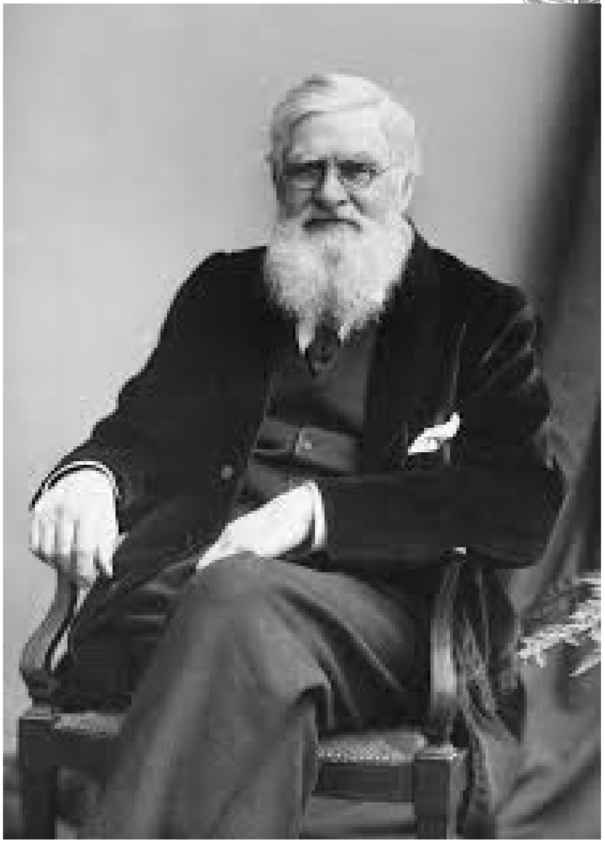

से स्तब्ध थे.

उनके द्वारा घूमी गई सब जगहों में सबसे महत्वपूर्ण दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट के कुछ दूरी पर गालापागोस द्वीपें थी. यहां पहुंच डार्विन ने देखा कि हर द्वीप पर चिड़िया लगभग एक जैसी दिखती है, पर उनमें मामूली फर्क भी होते हैं. किसी द्वीप पर उसकी चोंच लंबी होती है, तो किसी पर पतली, किसी द्वीप पर उसकी छाती पर एक रंग होता है तो किसी पर नहीं. चिड़ियों के साथ-साथ स्थानीय लोगों ने बताया कि वहां कछुए की पीठ पर बने डिजाइन को देख वो ये बता सकते थे कि यह किस द्वीप से आया है अर्थात, हरद्वीप पर अलग डिजाइनवाला कछुआ था. ऐसे कई अंतर उन्होंने देखे, और ध्यान से पढ़े. पर ऐसे अंतर क्यों हैं ये बात उनके पल्ले नहीं पड़ी.

वापस आकर जब उन्होंने सब कुछ दोबारा सोचा, तो धीरे-धीरे मन में कुछ खयाल स्थापित होने लगे. जिन द्वीपों पर खाने के लिए बीज थे. वहां चिड़िया की चोंच छोटी और मजबूत थी और जहां चिड़िया को खाने के लिए फूल के भीतर जाना पड़ता था, वहां लंबी चोंचवाली चिड़िया थी. यानी, द्वीपों की चिड़ियों में जरुरत अनुसार अंतर थे. उन्होंने सोचा की जरूर कुछ ऐसा हुआ होगा. पहले सभी द्वीप नजदीक होंगे और वहां एक किस्म की चिड़िया रहती होगी. समय के साथ जब द्वीप दूर हुए, तो कुछ द्वीपों पर खाने के

लिए बीज थे, और कुछ पर फूल. जहां बीज थे, वहां वो चिड़िया जिसकी चोंच औरों के मुकाबले थोड़ी मजबूत रही होगी, उसे खाने को मिला होगा. और जिस चिड़िया की चोंच कमजोर रह गयी होगी, वह भूखी मर गयी होगी. इस कारण से मजबूत चोंचवाली चिड़िया ने अगली पीढ़ी में जब जन्म दिया होगा, तो उसके बच्चों की चोंच भी, अपनी माँ की भांति, मजबूत रही होगी. ऐसा क्रम जब हजारों सालों तक चलता रहेगा, तो धीरे धीरे, उस जगह से कमजोर चोंचवाली चिड़िया लुप्त हो जाएगी और इसी कारण से, हरद्वीप पर अपने वातावरण के अनुकूल रहनेवाली चिड़िया फूलेगी फलेगी, और दूसरी लुप्त हो जाएगी. डार्विन ने इस विचार को 'थ्योरी ऑफ नेचुरलसिलेक्शन' कहा, अर्थात प्राकृतिक चयन का सिद्धांत मलरुप से विचार उनके दिमाग में 1830 के दशक के अंत तक बैठ चुका था. यह हमें उनकी निजी कापियों में लिखे लेखों से पता है. पर डार्विन ने 1-2 दोस्तों के अलावा यह खयाल किसी को नहीं बताये. ऐसा क्यों है, इसके कई कारण माने जाते हैं. पहला, कि यह एक खतरनाक विचार था, जो चर्च के उपदेश और सामान्य ज्ञान के खिलाफ कुछ बोल रहा था. इसलिए ऐसे खयाल का प्रस्ताव रखनेवाले की पिटाई होने की तगड़ी संभावना थी. दुसरे, डार्विन इसबारे में एक विशाल किताब लिख रहे थे. वह यह विचार सभी सबुतों के साथ दुनिया के समक्ष रखना चाहते थे और उनकी पत्नी धार्मिक प्रवृत्ति की थी. डार्विन, अपने विचारों से अपनी पत्नी के धार्मिक विचारों को ठेस नहीं पहुंचाना चाहते थे. बहरहाल नतीजा यह हुआ कि प्राकृतिक चयन के सिद्धांत के बारे में केवल डार्विन और उनके 2 दोस्त जानते थे.

उधर वाल्लेस इस सबसे अनजान, काम पर जुटे थे. कमाल की बात यह है कि जो खयाल डार्विन को गालापागोस द्वीपों पर आये, वाल्लेस को ठीत वहीं खयाल एशिया के द्वीपों पर आये उन्हें लगा जैसे वह अपने सवाल की खोज करते - करते उत्तर के बहुत नजदीक पहुंच चुके हैं. अपनी खोज के बारे में लेख लिखकर उन्होंने इंग्लैंड भेजा और उत्तेजना से जवाब का इंतजार करने लगे. जवाब तो आया पर उसमें लिखा था कि उलटे सीधे खयाल पालने की बजाय वह अपने काम से काम रखें. (जीवों के नमूने इंग्लैंड भेजें) जब किसी ने उन्हें गंभीरतापूर्वक नहीं लिया, तो हार मान उन्होंने डर्विन को एक खत लिखा. इस खत में उन्होंने अपने दिमाग में ईजाद हुए खयाल का विवरण किया और डार्विन की राय मांगी. डार्विन खत पढ़कर चौंक गए, स्तब्ध रह गए. उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ, कि हजारों किलोमीटर दूर बैठे वाल्लेस ने ठीक वही निष्कर्ष निकाला जिस पर डार्विन लगभग बीस साल पहले पहुंचे थे. उन्हें यह डर भी लगा कि कहीं सालों की मेहनत का सारा श्रेय वाल्लेस को ना मिल जाए. समझ नहीं आया कि क्या किया जाए, तो मदद मांगने के लिए उन्होंने वाल्लेस का खत अपने उन्ही दो दोस्तों से साझां किया जो प्राकृतिक संघर्ष के सिद्धांत के बारे में जानते थे. (इन दोस्तों के नाम चार्ल्स लयेल और जोसफ हुकर थे) दोस्तों ने खत पढ़ने पर माना की समस्या गंभीर है, पर एक प्रस्ताव रखा.

उन्होंने डार्विन और वाल्लेस से इंग्लैंड के एक मशहूर वैज्ञानिक सम्मेलन में, एक ही दिन, अपने-अपने नतीजे दुनिया के सामने रखने को कहा. डार्विन और वाल्लेस दोनों राजी हो गए. 1859 में सम्मेलन में दोनों के पर्चे पढ़े गए. बदकिस्मती से दोनों ही वहां नहीं थे. वाल्लेस हजारों किलोमीटर दूर अपना अध्ययन जारी रखे थे और डार्विन अपनी संतान की मौत का शोक मना रहे थे. पर्चे पढ़ने के अगले ही साल डार्विन ने अपनी किताब 'ऑन द ओरिजिन ऑफ स्पीशीज' प्रकाशित की. प्रकाशन के 150 से भी अधिक साल हो जाने के बाद यह किताब आज भी छपती और पढ़ी जाती है. इसमें डार्विन विस्तार से बताते हैं कि प्राकृतिक चयन का सिद्धांत क्या हैं. डार्विन एक सरल भाषा में लिखते थे, इसलिए इस किताब को पढ़ना काफी सरल है और इसे पढ़ने के लिए जीवन विज्ञान में विशेषज्ञ होना बिलकुल भी जरूरी नहीं है.

डार्विन और वाल्लेस के सिद्धांत के मूलरूप से तीन स्तंभ हैं.

पहला, विविधता : एक आबादी में किसी भी रूप (जैसे आंखे, कान, इत्यादि) को लेकर विविधता होगी. यह हम अपने आसपास देखकर ही बता सकते हैं. जैसे कुछ लोग छोटे होते हैं, तो कुछ लंबे.

दूसरा, प्रतियोगिता : हर एक क्षेत्रफल एक सीमित जन संख्या को संभल सकता है. यदि जनसंख्या बेहिसाब बढ़ने लगे तो सब वहां नहीं रह पाएंगे. कुछ लोगों को वहां से जाना होगा. इसलिए जनसंख्या में प्रतियोगिता होती है - अपने क्षेत्र में रहने की. इसे ऐसे भी समझा जा सकता है. मान लीजिए एक जंगल में केवल 100 शेर रह सकते हैं, पर वहां रहने वाली मादाओं ने 200 जन्म दिए हैं. अब जाहिर है कि सभी 200 नहीं बच पाएंगे. इनके बीच एक संघर्ष होगा, उस जगह में बने रहने का.

तीसरा, चुनाव : प्रतियोगिता के कारण 200 में से वहीं 100 शेर बचेंगे जो वहां रहने के लिए सबसे अधिक अनुकूलित होंगे.जब ऐसा हजारों सालों तक, अलग अलग जगहों पर चलता है -तो नए जीव-जंतु ईजाद होते हैं.

डार्विन को अपने विचार और किताब के लिए बहुत आलोचना

का सामना करना पड़ा. यहां पर हमारे तीसरे किरदार फिर वापसी करते हैं. आपको याद है बेटस, जो वाल्लेस के साथ दक्षिण अमेरिका गए थे. वो अभी भी वहां थे, और डार्विन के ख्यालों से बहुत प्रभावित हुए. उन्होंने अपने अध्ययन से डार्विन के सिद्धांत के पक्ष में कई सबूत भेजे. उनमें से एक उल्लेखनीय हैं. बेटस ने देखा की दक्षिण अमेरिका में जंगलों में कई प्रकार की तितलियां होती है - इनमें से कुछ जहर भरी होती हैं, और कुछ नहीं. परिणामस्वरुप, जहरीली तितलियों को कोई जानवर या कीड़ा कुछ नहीं कहता, और बिना जहरवाली तितलियां दूसरों द्वारा खाई जाती है. मगर, इस बीच कुछ मजेदार होने लगा. जो तितलियां जहरीली नहीं थी. वो जब नयी तितलियों को जन्म देती तो उनके रंग एक-दूसरे से थोड़े अलग रहते (पहले सिद्धांत, विविधता के अनुकूल) ऐसे में जिन नवजात तितलियों का रंग जहरीली तितलीयों जैसा होता, उन्हें कोई नहीं खाता. इस तरह से जहरीली तितलियों जैसी बिना जहरवाली तितलियां बच जाती और दूसरी मारी जाती. धीरे-धीरे, सभी तितलियां एक जैसी दिखने लगी और तितलियां खाने बाले कीड़े पता नहीं कर पाते थे कि किसे खाना है और किसे नहीं. जब बेटस ने यह किस्सा लिखकर डार्विन को भेजा, तो डार्विन ने कहा, 'प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का इससे बेहतर उदाहरण मैंने नहीं देखा.' बेटस दक्षिण अमेरिका में बहुत साल रहे. वापस आने से पहले तक वह करीब दस हजार जीवों का विवरण दे चुके थे. उनमें से अनेक, मानव जाति ने पहले कभी नहीं देखे थे.

उधर वाल्लेस ने भी हमेशा ये स्वीकार किया कि भले ही डार्विन और उनका पर्चा एक ही दिन दुनिया के सामने रखा गया हो, डार्विन उस निष्कर्ष पर वाल्लेस से कहीं पहले पहुंच चुके थे. वैज्ञानिक जीवन में मैंने ऐसा होते बहुत कम देखा है जब एक वैज्ञानिक दुसरे को खुले दिल से श्रेय देता है. वाल्लेस ने अपने जीवन में केवल एक ही किताब लिखा. उसका नाम 'डार्विनिस्म' था. डार्विन ऐसे सम्मान को पाकर, निश्चित रूप क़े बहुत खुश होते, पर अफसोस से, किताब छपने के कुछ साल पहले ही उनका निधन हो गया.

हालांकि डर्विन ये जानते थे कि ऐसा कुछ जरूर होगा जिससे माँ बाप जैसे लक्षण बच्चों में आते हैं, पर वो इन बारीकियों से अनजान थे. बहुत दशक बाद पता चला कि जिस तत्व की खोज डार्विन को थी, उसे 'डी. एन.ऐ.' कहते है. मगर ऐसा कुछ है, इसके संकेत डार्विन के समय में ही आने लगे थे. ऑस्ट्रिया में एक चर्च के कर्मचारी ग्रेगोर में डेलने मटर के पौधों के साथ 1860 के दशक में बहुत से परीक्षण किए. नतीजा ये निकला कि माँ-बाप के लक्षण बच्चों तक कैसे पहुंचते हैं, वे इसका गणित समझ गए थे. अचूक तरीके से वह भी नहीं कह सकते थे कि क्या तत्व है जिससे ऐसा होता है, पर उनके काम से डार्विन को बहुत मदद मिलती. उन्हें अपने प्राकृतिक चयन के सिद्धांत को एक ठोस सहारा मिलता, और यकीनन वे इस सहारे को अपनी ओर आती आलोचना से जूझने में मदद लेते. बहरहाल, अफसोस यह रहा कि डार्विन अपने जीवन काल में मेंडेल का काम पढ़ नहीं पाए. दरअसल मेंडेल, क्योंकि वह अंग्रेजी में नहीं लिखते थे और क्योंकि उनके काम में बहुत सा गणित था, काम छपने के बाद, लुप्त सा हो गया. अंततः बीसवीं सदी के शुरुआत में, सन 1900 में, तीन वैज्ञानिकों ने मेंडेल के पर्चे को अकस्मात ही ढूंढ निकाला जिससे और पूरा वैज्ञानिक क्षेत्र, हैरान रह गया कि दशकों पहले किसी ने इतना महत्वपूर्ण काम कर रखा था. दुर्भाग्य से, मेंडेल तब तक जीवित नहीं थे.

बहुत समय तक ये माना जाता था कि प्राकृतिक चयन बहुत धीमी प्रक्रिया है - इसे हजारों साल लगते हैं. पर असल में इसके कई उदाहरण हमारे आसपास ही है. इनमें सबसे मशहूर है जीवाणुओं का एंटीबायोटिक के प्रति प्रतिरोध. जब बीसवीं सदी के शुरुआत में एंटी बायोटिक्स का आविष्कार हुआ. तो सबने सोचा कि अब जीवाणुओं द्वारा होने वाली बीमारियों का अंत हो जाएगा. मगर कुछ ही सालों में देखा गया कि जीवाणुओं ने एंटीबायोटिक से लड़ने और उसे नष्ट करना सीख लिया है. अब हाल ये है कि किसी भी एंटीबायोटिक के आते ही कुछ एक साल में जीवाणु उससे लड़ने में सक्षम हो जाते हैं. ऐसा डार्विन और वाल्लेस के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत के अनुरूप ही है. इसे समझने के लिए ऐसा सोचिए की शुरुआत में सभी जीवाणु एंटी बायोटिक से मारे जा रहे थे, पर प्रजनन के दौरान पैदा हुआ नया जीवाणु अपनी मादा से थोड़ा अलग दिख सकता है, ठीक वैसे ही जैसे बच्चे अपने माँ-बाप से थोड़ा अलग दिखते हैं. ऐसे ही अलग जीवाणु में यदि एंटीबायोटिक से लड़ने की शक्ति आ जाए, तो वो फटाफट एंटीबायोटिक से लड़ने की क्षमतावाले जीवाणु पैदा कर देगा और हर कोई जो एंटीबायोटिक से लड़ नहीं पायेगा, मृत हो जाएगा. यह उदाहरण प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का है और हमारे ठीक सामने खेला जा रहा है.

डार्विन और वाल्लेस के बाद लगभग 150 सालों में जीवन विज्ञान ने बहुत प्रगति कर ली है और आज हमें ऐसी-ऐसी बारीकियां पता है, जिन्हें अगर डार्विन और वाल्लेस को हम बताते, तो जरूर उनकी आंखें, फटी रह जाती. पर वो कहानी मैं किसी और दिन सुनाऊंगा.

एलआईजीओ (लीगो)-लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेव ऑब्जर्वेटरी

- प्रतिभा गुप्ता
वैज्ञानिक अधिकारी एफ
प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान, भाट, गाँधीनगर 382428
ई-मेल : pgupta@ipr.res.in

लीगो, लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल वेव ऑब्जर्वेटरी, दो तरंगसंसूचकों (डिटेक्टरों) का नेटवर्क है. संयुक्त राज्य अमेरिका में एक संसूचक एलए (लिविंग्सकटन) जो कि मुख्य है और दूसरा संसूचक हनफोर्ड में, डब्ल्यूए (वॉशिंगटन) में स्थित है. दोनों संसूचक एल आकार के है, जिनकी बांह की लंबाई 4 किलोमीटर है (चित्र 2).

एलआईजीओ एक ऑब्जर्वेटरी है जो लेजर इंटरफेरोमीटर की सहायता से अंतरिक्ष की गहराई से गुरुत्वाकर्षण तरंगों को सुनने के लिए डिज़ाइन की गई है.

लीगो के साथ दो अन्य वेधशालाएं इटली में वर्गों, हनोवर, जर्मनी में जीईओ 600 संचालन में है. जापान में केएजीआरए निर्माणाधीन है.

वर्गों, इटली के कैस्किना में यूरोपीय गुरुत्वाकर्षण वेधशाला में स्थित 3 किमी का डिटेक्टर है. गुरुत्वाकर्षण तरंगों का

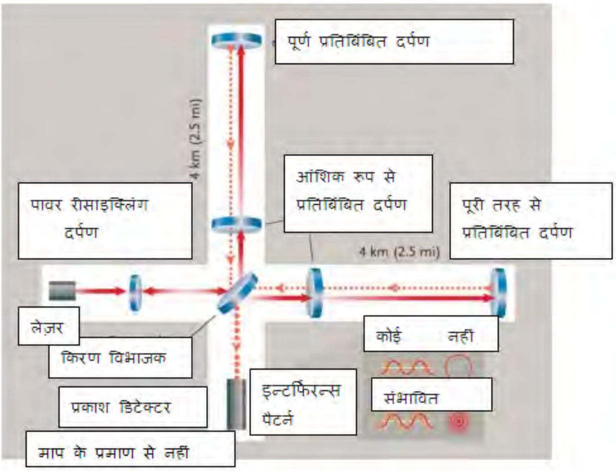

चित्र 1: एलआईजीओ का संरचना सिद्धांत

पता लगाने के लिए ये यंत्र 'एंटीना' के रूप में कार्य करते हैं. एलआईजीओ और इटली के वर्गों समूह द्वारा संयुक्त रूप से आंकडों का विश्लेषण किया जाता है. इस सहयोग से गुरुत्वाकर्षण तरंगों की खोज को काफी बढ़ावा मिला है.

जीईओ 600 हनोवर, जर्मनी के पास स्थित एक 0.6 किमी (600 मीटर) इंटरफेरोमीटर है, जो जर्मन और ब्रिटिश दोनों सरकारों द्वारा वित्त पोषित है. यह क्रियाशील गुरुत्वाकर्षण तरंग डिटेक्टर भविष्य में डिटेक्टरों में उपयोग के लिए उन्नत इंटरफेरोमीटर और ऑप्टिकल प्रणाली विकसित करने के लिए एक परीक्षण स्थल के रूप में भी कार्य करता है. जीईओ 600 और एलआईजीओ के वैज्ञानिकी सहयोग समझौते के तहत दोनो डेटा का संयुक्त विश्लेषण करते हैं.

वर्तमान में जापान की कामीका खान (सुपर कमीकांदे न्यूट्रीनो डिटेक्टर का स्थान) के अंदर केएजीआरए एक 3 किमी इंटरफेरोमीटर का निर्माण कर रहा है. डिटेक्टर केएजीआरए भूमिगत वर्तमान में जापान कि कामीका खान (सुपर कमीकांदे न्यूट्रीनो डिटेक्टर का स्थान) के अंदर केएजीआरए एक 3 किमी इंटरफेरोमीटर का निर्माण कर रहा है. डिटेक्टर केएजीआरए भूमिगत है, जिसके कारण इसमें बहुत कम भूकंपीय कंपन होगा. इस वेधशाला का पूर्ण स्तरीय संचालन इस दशक में शुरू होने की उम्मीद है.

एलआईजीओ का वैज्ञानिक लक्ष्य : खगोल विज्ञान और मौलिक भौतिकी के क्षेत्र में परियोजना के वैज्ञानिक लक्ष्य हैं. गुरुत्वाकर्षण तरंगों को आइंस्टीन की सामान्य सापेक्षता सिद्धांत (जनरल थ्योरी ऑफ़ रिलेटिविटी) के एक आवश्यक तत्व के रूप में बताया जाता है. गुरुत्वाकर्षण तरंगों के सबसे प्रबल स्रोत हमारे ब्रह्मांड में रहस्यमय वस्तुओं में निहित हैं : ब्लैक होल, न्यूट्रॉन सितारे, सुपरनोवा, यहां तक कि

चित्र 2: एलआईजीओ हनफोर्ड (बाया) और एलआईजीओ लिविंगस्टन इंटरफेरोमीटर (दाया) के स्थानों और विस्तारों को दिखाते हुए हवाई दृश्य। (तस्वीरें: एलआईजीओ)

बिग बैंग (चित्र 6) भी. भौतिकी और खगोल विज्ञान दोनों में प्रश्नों को हल करने के लिए तरंगों द्वारा दी गई जानकारी से पता चलता है कि व्यक्तिगत स्रोत आकाश में कहाँ पर हैं. इसके लिए पृथ्वी पर व्यापक रूप से फैले डिटेक्टरों का एक नेटवर्क आवश्यक है.

एलआईजीओ-इंडिया की भूमिका : एलआईजीओ-इंडिया लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल-वेव ऑब्सजर्वेटरी (एलआईजीओ) प्रयोगशाला (कैल्टेक और एमआईटी द्वारा संचालित) और भारत में तीन संस्थानों - राजा रामन्ना प्रगत प्रौद्योगिकी केंद्र (इंदौर), प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान (गांधीनगर) और इंटर-यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स (पुणे) के बीच एक सहयोग है. इस परियोजना की सफलता के लिए ये तीन संस्थान आवश्यक पूरक कौशल और संसाधनों को प्रदान करते हैं. एलआईजीओ, संयुक्त राज्य अमेरिका में दो साइटों का संचालन करता है और इटली (वर्गो) में इसी प्रकार के एक डिटेक्टर के लिए सहयोग प्रदान करता है. ये डिटेक्टर साथ में मिलकर आकाश के हिस्से पर स्रोतों का त्रिभुज बना सकते हैं.

चित्र 3: गुरुत्वाकर्षण तरंगों के स्रोत : स्पिनिंगन्यूट्रॉन सितारे: एक स्पिनिंगन्यूट्रॉन स्टार, एक विशाल स्टार विस्फोट के बाद पीछे छोड़ा गया कोर, ब्लैक होल के टकराने वाले उत्पादकों के समान आवृत्तियों पर स्पेसटाइम को उत्तेजित कर सकता है.

अंतरिक्ष और समय संरचना में तरंगों को मापने के लिए एक नया गुरुत्वाकर्षण लहर डिटेक्टर दुनिया भर के विश्वविद्यालयों के सहयोग से भारत में बनाया जाएगा.

नया लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेविटेशनल-वेव वेधशाला (एलआईजीओ) डिटेक्टर अमेरिका में पहले से ही परिचालन में शामिल होगा. एलआईजीओ डिटेक्टरों ने सन् 2017 में दो विशाल विलय ब्लैक होल्स द्वारा उत्पादित पहली गुरुत्वाकर्षण लहरों की खोज की. इस शोध ने वर्ष भौतिकी में नोबेल पुरस्कार जीता.

खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी (आईयूसीएए) पुणे के इंटर-यूनिवर्सिटी सेंटर के निदेशक के अनुसार भारत में नए डिटेक्टर के लिए स्थान चुनने की प्रक्रिया जारी है. उनके अनुसार, 'जब डिटेक्टर का निर्माण पूरा हो जाता है, तो आईयूसीएए इसे चलाएगा.' एलआईजीओ इंडिया साझेदारी को एलआईजीओ पर न्यूटन-भाभा परियोजना के माध्यम से विज्ञान और प्रौद्योगिकी सुविधाएं परिषद (एसटीएफसी) द्वारा वित्त पोषित किया जाता है. उन्होने कहा कि इंदौर में उन्नत प्रौद्योगिकी के लिए राजा रामन्ना सेंटर और अहमदाबाद में प्लाज्मा अनुसंधान संस्थान प्रणाली के विभिन्न हिस्सों का निर्माण कार्य करेंगे. सिस्टम बनाने के लिए आवश्यक

चित्र 4: गुरुत्वाकर्षण तरंगोंके स्रोतःसुपरनोवा : जब एक विशाल सितारा ख़त्म होता है तब सुपरनोवास के रूप में जाना जाने वाला शक्तिशाली विस्फोट ट्रिगर होता है, जो अंतरिक्ष को हिला सकता है और बह्मांडका उच्च आवृत्ति गुरुत्वाकर्षण तरंगों के विस्फोट के साथ विस्फोट कर सकता है.

दर्पण और डिटेक्टरों को अमेरिका में एलआईजीओ के सहयोगियों से भेजा जाएगा.

एक तीसरा एलआईजीओ डिटेक्टर भविष्य में पाए जाने वाले गुरुत्वाकर्षण लहरों की उत्पत्ति को इंगित करने में मदद करेगा. भौगोलिक दृष्टि से मौजूदा एलआईजीओ- वर्गो डिटेक्टर सरणी से अलग भारत में एक नया डिटेक्टर का जुड़ना, अच्छी तरह से स्रोत-स्थानीयकरण सूक्ष्मता में (5 से 10 गुना) से सुधार करेगा, इस प्रकार एक उत्कृष्ट खगोलीय उपकरण के रूप में GW ,जीडब्ल्यू अवलोकनों का उपयोग करने में सक्षम बनाता है. एलआईजीओ-भारतीय वैज्ञानिकों को पूरे आकाश में गुरुत्वाकर्षण तरंग के स्रोतों का पता लगाने में सक्षम करेगा.

एलआईजीओ-इंडिया से भारत को लाभ : एलआईजीओ परियोजना भारत को अन्य तरीकों से भी लाभान्वित करेगी. गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पता लगाना वर्तमान समय में सर्वोच्च आकर्षक वैज्ञानिक खोजों में से एक होगा. इस खोज में भारतीय वैज्ञानिक समुदाय को शामिल करने से भारत में प्रयोगात्मक विज्ञान की दृश्यता और आकर्षकता बढ़ेगी. भारत में दुनिया की अग्रणी सुविधा की उपस्थिति का उपयोग छात्रों को आकर्षित करने और तकनीकी करियर को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करने के लिए किया जा सकता है. अंत में, गुरुत्वाकर्षण तरंग को पहचानने के लिए आवश्यक भौतिक माप तर्कसंगत रूप से सबसे सटीक बनाये गये हैं, और उनमें अत्याधुनिक प्रौद्योगिता शामिल है जिनमें कई गैर-सैन्य अनुप्रयोग शामिल हैं.

गुरुत्वाकर्षण तरंगें : 1916 में अल्बर्ट आइंस्टीन द्वारा अनुमान किया गया था कि गुरुत्वाकर्षण तरंगें स्पेस टाइम मैट्रिक्स में वे तरंगें हैं जिन्हें प्रकाश की गति से तरंग के रूप में प्रसारित माना जाता है. ये तरंगें स्पेसटाइम को घुमाती (तोड़ना-मरोड़ना) हैं, जो एक विशिष्ट पैटर्न में आस-पास के बिंदुओं के बीच प्रभावी दूरी को बदलती हैं. वैज्ञानिकों ने इंटरफेरोमीटर नामक उपकरणों का उपयोग करके गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पता लगाने का प्रयास किया जो लेजर बीम को दो लंबवत उपकरण-समूह के साथ उछालते हैं.

1993 में, खगोल भौतिकीविद रसेल हल्स और जोसेफ टेलर को 1974 में न्यूट्रॉन सितारों की बाइनरी जोड़ी (पीएसआर 1913 + 16), जो पृथ्वी से 21,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित है की खोज के लिए भौतिकी में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया. सात साल बाद, युगल में एक स्टार के एक साल के रेडियो उत्सर्जन को ट्रैक करने के बाद, टेलर और दो अन्य सहयोगियों (जोएल वेसबर्ग और ली फाउलर) ने नोट किया कि दो सितारों के लिए कक्षा एक-दूसरे के लिए ले जाने का समय बिल्कुल घट रहा था जिस तरह से सामान्य सापेक्षता का अनुमान लगाया कि क्या दो सितारे गुरुत्वाकर्षण तरंगों को विकिरण कर रहे थे? अन्य बाइनरी न्यूट्रॉन स्टार सिस्टम के विश्लेषण ने इस प्रभाव का दृढ़ता से निष्कर्ष निकाला कि गुरुत्वाकर्षण तरंगें केवल सैद्धांतिक नहीं थीं.

40 साल बाद, 14 सितंबर, 2015 को, गुरुत्वाकर्षण लहरों का सीधे एलआईजीओ के इंटरफेरोमीटर द्वारा पता चला. एलआईजीओ को लेजर प्रकाश पर उस विकिरण के छाप के माध्यम से गुरुत्वाकर्षण तरंगों के अत्यंत सूक्ष्मरूप से हल्की आवाज़ को समझने के लिए डिज़ाइन किया गया है, इसलिए यह उपलब्धि हासिल की गई थी. यह फुसफुसाहट कितनी सूक्ष्म हैं? एलआईजीओ द्वारा लगभग 10-19 मीटर (प्रोटॉन से 10,000 गुना छोटा) की बांह की लंबाई में बदलाव का पता लगाया जाना चाहिए. संवेदनशीलता के इस स्तर को प्राप्त करने के लिए लेजर परिशुद्धता, वैक्यूम प्रौद्योगिकी, और उन्नत ऑप्टिकल और मैकेनिकल सिस्टम में तकनीकी

चित्र 5:गुरुत्वाकर्षण तरंगों के स्रोत : बहुत अधिक भारवाले ब्लैक होल जोड़े का सिम्युलेशन।

नवाचारों का उल्लेखनीय संयोजन होना आवश्यक है. जबकि गुरुत्वाकर्षण तरंगों के लिए एलआईजीओ की खोज अपने सबसे प्रमुख प्रणालियों (लेजर, मिरर और फोटो डिटेक्टर) पर काफी निर्भर करती है, यह असाधारण सहायक इंजीनियरिंग और आधारभूत संरचना है जो एलआईजीओ के कार्य को संभव बनाता है. हालांकि एलआईजीओ की जटिल इंजीनियरिंग प्रणाली आंतरिक रूप से अलग होती है, जो शोर को खत्म करने के लक्ष्य के साथ मिलकर काम करती है.

अनचाहे शोर, जैसे पर्यावरण से भौतिक कंपन (आस-पास की सड़कों पर चलने वाली कारों से, दूरदराज के समुद्र तटों पर तरंगों के टकराने से), लेजर के भीतर क्वांटम उतार-चढ़ाव, ऑप्टिक्स के आकार में नैनोमीटर-पैमाने में परिवर्तन, लेजर के पथ को पार करने वाले अणु एलआईजीओ के अपने संवेदनशील संसूचन के प्रयासों में बाधा डाल सकता है. एलआईजीओ के इंजीनियरिंग सिस्टम और उपप्रणाली अंतरिक्ष के गहराई से गुरुत्वाकर्षण तरंगों की हल्की फुसफुसाहट सुनने के लिए एलआईजीओ के लिए इस शोर को दूर रखा जाता है.

कई ज्ञात खगोलीय स्रोतों से गुरुत्वाकर्षण तरंगों और उच्च ऊर्जा न्यूट्रिनो दोनों का उत्पादन होने की उम्मीद है. विस्फोट के दौरान स्टार का विरूपण गुरुत्वाकर्षण तरंगों का उत्पादन कर सकता है, जबकि न्यूट्रिन, फ्लेयर्स से उभर सकते हैं. सिकुड़ने वाले सितारों से अधिकतम अपेक्षित गुरुत्वाकर्षण-तरंग उत्सर्जन के मॉडल के आधार पर सिमुलेशन इंगित करते हैं कि ऐसे स्रोत पृथ्वी से कम से कम ~ 10 मेगापारसेक (33 मिलियन प्रकाश वर्ष) दूरी पर स्थित हैं.

नीचे दिए गए कुछ एलआईजीओ के सबसे प्रभावशाली इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी घटक हैं :

लीगो के लेजर
अल्ट्रा-हाई वैक्यूम
लीगो ऑप्टिक्स
प्रतिक्रिया और नियंत्रण प्रणाली
कंपन अलगाव

गुरुत्वाकर्षण तरंगों को क्यों खोजें? एलआईजीओ द्वारा पता लगाए जाने वाले गुरुत्वाकर्षण तरंगें ब्रह्मांड की सबसे ऊर्जावान घटनाओं के कारण है, जैसे ब्लैक होल टकराव, तारों का विस्फोट, और यहां तक कि ब्रह्मांड का जन्म भी. गुरुत्वाकर्षण तरंगों द्वारा दी गई जानकारी का पता लगाने और विश्लेषण करने से हम ब्रह्मांड को अलग नज़रिये से देख पाएंगे. गुरुत्वाकर्षण तरंगों की खोज ब्रह्मांड पर अध्ययन को एक आयाम देगा, हमें इन घटनाओं की गहरी समझ देगा, और भौतिकी, खगोल विज्ञान, और खगोल भौतिकी में अत्याधुनिक अनुसंधान में वृद्धि करेगा.

हमारे ब्रह्मांड में कई घटनाएं गुरुत्वाकर्षण तरंगों और उच्च ऊर्जा न्यूट्रीनो के संभावित उत्सर्जक हैं. संयुक्त रूप से विभिन्न परीक्षणों के डेटा का विश्लेषण करना और एक सामान्य उत्पत्ति की परिकल्पना की जांच करना एक चुनौती है.

विशाल ब्रह्मांडीय टकराव और तारकीय विस्फोट स्पेस टाइम को खुद ही खड़खड़ा सकते हैं. सामान्य सापेक्षता भविष्यवाणी कहती है कि स्पेस टाइम संरचना में तरंगें ऊर्जा को विनाश आपदाओं से दूर विकृत करती हैं. तरंगें सूक्ष्म हैं; जब तक वे पृथ्वी तक पहुंचती हैं, तब तक कुछ प्रोटोन की चौड़ाई दस हजार और फिर हज़ार तक कम हो जाती है.

आइंस्टीन द्वारा गुरुत्वाकर्षण तरंगों की भविष्य वाणी : ये प्लॉट (चित्र 7) गुरुत्वाकर्षण तरंगों के सिग्नल दिखाते हैं जो लिविंग्स्टन, लुइसियाना और वाशिंगटन के हनफोर्ड में जुड़वां एलआईजीओ ऑब्सर्वेटरी द्वारा खोजे गये थे. ये सिग्नल दो विलय ब्लैक होल से आए थे और प्रत्येक ब्लैक होल 1.3 अरब प्रकाश-वर्ष दूर थे.

शीर्ष दो प्लॉट लिविंगस्टन और हनफोर्ड में प्राप्त डेटा के साथ वेव फॉर्म की अनुमानित आकृतियों को दिखाते हैं. इन अनुमानित तरंगों से पता चलता है कि उपकरण के पहले-वर्तमान शोर के साथ अल्बर्ट आइंस्टीन के सापेक्षता के सामान्य सिद्धांत के समीकरणों के अनुसार दो विलय ब्लैक होल दिखने चाहिए. एक्स-अक्ष समय को इंगित करता है और वाई-अक्ष तनाव को. तनाव उस आंशिक मात्रा का प्रतिनिधित्व करता है जिससे दूरी विकृत हो जाती है.

***चित्र 6 : गुरुत्वाकर्षण तरंगोंके स्रोत** : बिग बैंग : बिग बैंग ने 13.8 अरब साल पहले ब्रह्मांड के आकार की गुरुत्वाकर्षण तरंगों को जन्म दिया होगा। इन तरंगों ने 380,000 साल बाद ब्रह्मांड में जारी पहली रोशनी पर छाप छोड़ी होगी, और आज उस को कॉस्मिकमाइक्रोवेव पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है।*

जैसा कि प्लॉट बताते हैं, एलआईजीओ डेटा आइंस्टीन की भविष्यवाणियों से बहुत निकटता से मेल खाता है.

चित्र 7, दोनों डिटेक्टरों से डेटा की तुलना करता है. दो साइटों पर डिटेक्टरों के अभिविन्यास में मतभेदों के कारण, हनफोर्ड डेटा तुलना के लिए उलटा कर दिया गया है. डेटा को लिविंगस्टन और हनफोर्ड के बीच गुरुत्वाकर्षण-तरंग संकेतों के यात्रा के समय के लिए भी सही स्थानांतरित किया गया था (सिगन्ल पहले लिविंगस्टन पहुंच गया था, और फिर, प्रकाश की गति से यात्रा करने के बाद, हनफोर्ड सेकेंड के सात हजारवें स्थान पर पहुंच गया). जैसे-जैसे प्लॉट दर्शाता है, दोनों डिटेक्टरों ने एक ही घटना देखी और उसकी पहचान की पुष्टि की.

एलआईजीओ का संरचना सिद्धांत : सिग्नल का पता लगाने के लिए, एलआईजीओ लेजर लाइट के बीम को विभाजित करने के लिए एक विशेष दर्पण का उपयोग करता है और बीम को एक दूसरे के लिए 90 डिग्री कोण पर 4 किलोमीटर लंबी दो बाहों को भेजता है (चित्र1). 400 बार पीछे और आगे लौटने के बाद, प्रत्येक बीम की यात्रा को 1,600 किलोमीटर की राउंड-ट्रिप में बदलकर, इसके स्रोत के पास प्रकाश पुनः संयोजित होता है.

प्रयोग इस तरह से डिज़ाइन किया गया है कि, सामान्य परिस्थितियों में प्रकाश तरंगें एक दूसरे को रद्द कर दें जब वे पुनः संयोजित हों, ताकि पास के डिटेक्टर को कोई प्रकाश संकेत न भेजें.

लेकिन एक गुरुत्वाकर्षण तरंग एक ट्यूब को फैलाती है जबकि दूसरे को निचोड़ती है, जिससे दो बीम एक दूसरे के सापेक्ष यात्रा करते हैं. डिटेक्टर से एक रोशनी आती है, जो एक गुजरती तरंग का संकेत देता है.

लीगों में लुइसियाना में एक डिटेक्टर है और दूसरा यह सुनिश्चित करने के लिए वाशिंगटन में है कि तरंग एक स्थानीय घटना नहीं है और इसके स्रोत का पता लगाने में मदद मिल सके.

यहां तक कि इस पहली पहचान के साथ कि एलआईजीओ गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पता लगा सकता है, वर्तमान इंटरफेरोमीटर एलआईजीओ उपकरणों का अंतिम संस्करण नहीं हैं. एमआईटी, कैल्टेक और कई अन्य तकनीकी भागीदारों के एलआईजीओ इंजीनियर लगातार इंटरफेरोमीटर के प्रदर्शन में सुधार के नए तरीकों की तलाश और आविष्कार कर रहे हैं. अगले कई सालों में, उन्नत एलआईजीओ डिटेक्टरों में और बदलाव आएंगे जब तक कि उपकरण इसकी अपेक्षित 'डिजाइन संवेदनशीलता' तक नहीं पहुंच जाते.

विज्ञान पर लीगो का प्रभाव : एलआईजीओ जैसे गुरुत्वाकर्षण तरंग डिटेक्टर गुरुत्वाकर्षण और खगोल भौतिकी से संबंधित कुछ उत्कृष्ट प्रश्नों का उत्तर देंगे, जैसे कि :

क्या सामान्य सापेक्षता गुरुत्वाकर्षण का सही सिद्धांत है?

चरम घनत्व और दबाव के तहत पदार्थ कैसे व्यवहार करता है?

स्टेलर-मास ब्लैक होल्स कितने प्रचुर मात्रा में हैं?

केंद्रीय इंजन ड्राइविंग गामा किरण विस्फोट क्या है?

क्या होता है जब एक विशाल सितारा सिकुड़ जाता है?

एलआईजीओ सीधे 'बहु-मैसेंजर खगोल विज्ञान' में वैज्ञानिक समुदाय को संलग्न करेगा, एक सहयोगी प्रयास जहां गुरुत्वाकर्षण तरंग डिटेक्टरों और विभिन्न प्रकार के दूरबीनों (विद्युत प्रकाशक विकिरण जैसे दृश्य प्रकाश, एक्स-रे, गामा-रे, रेडियो तरंग इत्यादि के साथ देखकर) और यहां तक कि न्यूट्रिनो डिटेक्टरों, एक ही समय में खगोलीय स्रोतों का निरीक्षण करेंगे. निरीक्षण करने की प्रत्येक विधि एक ही वस्तु या घटना पर एक अलग रूप प्रदान करती है जो उन्हें कई तरीकों से अध्ययन करने की अनुमति देती है और संबंध और पारस्परिक क्रिया दर्शाती है जो पहले नहीं देखी गयी हैं.

लीगो की उपलब्धियां : एलआईजीओ ने पहली प्रत्यक्ष गुरुत्वाकर्षण तरंग संकेतों का पता लगाया, जिससे पहली बार साबित हुआ कि 1916 में अल्बर्ट आइंस्टीन द्वारा प्रस्तावित स्पेसटाइम में तरंगें असली थीं. 14 सितंबर 2015 को, संयुक्त राज्य अमेरिका में दो उन्नत एलआईजीओ ऑब्सर्वेटरी ने पृथ्वी से गुज़रती गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पहला प्रत्यक्ष अवलोकन किया. यह सिग्नल 1.3 बिलियन प्रकाश वर्ष की दूरी पर दो ब्लॅक होल्स (चित्र 5) के विलय से उत्पन्न हुआ था. यह इस तरह के कई अपेक्षित अवलोकनों में से पहला है, गुरुत्वाकर्षण-तरंग खगोल विज्ञान के क्षेत्र को स्थापित करेगा और जो ब्रह्मांड पर एक नई रोशनी डालता है.

लिगो की सफलता गैलीलियो के समान है जो अपनी दूरबीन आकाश की तरफ मोड़ता है. उस पल से पहले हम सितारों और ग्रहों के बारे में बहुत कम जानते थे. हमें नहीं पता था कि अन्य आकाशगंगाएं हैं और ब्रह्मांड की अखंडता की कोई अवधारणा नहीं थी. गुरुत्वाकर्षण तरंगें ब्रह्मांड को देखने का एक नया तरीका है. वे सामान्य सापेक्षता की एक आश्चर्यजनक पुष्टि हैं और पूरे ब्रह्मांड में प्रलय विस्फोट और टक्कर प्रकट करेंगे. गुरुत्वाकर्षण तरंगें हमें जो सिखा सकती हैं शायद अभी तक उसकी कल्पना ही की जा सकती है.

लीगो और वर्गों, सितारों के टकराने से उत्पादित गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पहले पता लगाते हैं. यह खोज गुरुत्वाकर्षण तरंगों और प्रकाश दोनों में देखी गयी पहली ब्रह्मांडीय घटना है. पहली बार, वैज्ञानिकों ने सीधे गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पता लगाया है - दो न्यूट्रॉन सितारों के शानदार टकराव से प्रकाश के अलावा स्पेस-टाइम में तरंगें उत्पन्न होती हैं. यह खोज यू.एस.स्थित लेजर इंटरफेरोमीटर गुरुत्वाकर्षण-तरंग ऑब्जेर्वेटरी (एलआईजीओ) का उपयोग करके की गई थी; यूरोप स्थित वर्गों डिटेक्टर; और कुछ 70 की संख्या में भूमिगत और अंतरिक्ष-आधारित ऑब्जर्वेटरी का भी इसमें योगदान रहा.

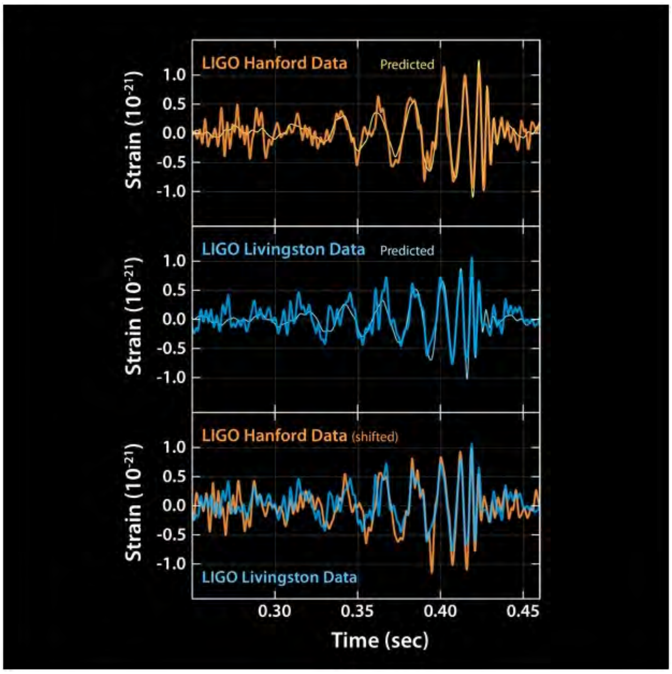

चित्र 7 : येप्लॉट गुरुत्वाकर्षण तरंगों के सिग्नल दिखाते हैं जो लिविंगस्टन, लुइसियाना और वाशिंगटन के हनफोर्ड में जुड़वां एलआईजीओ ऑब्जर्वेटरी द्वारा पता चले हैं.

लगभग 130 मिलियन वर्ष पहले, दो न्यूट्रॉन सितारे एक-दूसरे की कक्षा के अंतिम क्षणों में थे, केवल 300 किलोमीटर या 200 मील से अलग थे, और उनके बीच की दूरी को खत्म करते समय गतिमान हो रहे थे. जैसे-जैसे सितारों ने तेजी से और करीब एक साथ घूमना शुरू किया, वे शक्तिशाली गुरुत्वाकर्षण तरंगों के रूप में ऊर्जा को एक दूसरे से टकराकर टूटने से पहले, आसपास के अंतरिक्ष-काल को फैला और विकृत कर गये.

न्यूट्रॉन सितारे सबसे छोटे, घने सितारों के अस्तित्व के रूप में जाने जाते हैं और जब बड़े सितारे सुपरनोवा (चित्र4) में विस्फोट करते हैं तो वे न्यूट्रॉन में गठित होते हैं. चूंकि इन न्यूट्रॉन सितारों (चित्र 3) ने एक साथ चक्कर किया, इसलिए उन्होंने गुरुत्वाकर्षण तरंगों को उत्सर्जित किया जो लगभग 100 सेकंड के लिए पता लगाने योग्य थे; जब वे टकराते थे, तो गामा किरणों के रूप में प्रकाश का एक फ्लैश उत्सर्जित होता था और गुरुत्वाकर्षण तरंगों के बाद पृथ्वी पर लगभग दो सेकंड देखा जाता था. स्मैशअप के बाद के दिनों और हफ्तों में, प्रकाश के अन्य रूप, या विद्युत चुम्बकीय विकिरण - एक्स-रे, पराबैंगनी, ऑप्टिकल, अवरक्त, और रेडियो तरंगों सहित - का पता चला.

लीगो से गुरुत्वाकर्षण तरंगों की खोज : लीगो की सर्वप्रथम खोज GW150914 है जिसमें 'बाइनरी ब्लैक होल विलय से गुरुत्वाकर्षण तरंगों का निरीक्षण' हुआ. अंतरराष्ट्रीय एलआईजीओ और वर्गो सहयोगों द्वारा कुल छह पहचान की पुष्टि अभी तक की गई हैं, जो गुरुत्वाकर्षण तरंग खगोल विज्ञान के नए क्षेत्र के आधार का निर्माण करते हैं. अन्य खोज GW170817: एक बाइनरी न्यूट्रॉन स्टार प्रेरणा से गुरुत्वाकर्षण तरंगों का इन स्पाइरयल है. GW 170814: एक बाइनरी ब्लैक होल को लेसेन्स से गुरुत्वाकर्षण तरंगों का एक तीन-डिटेक्टर निरीक्षण है. GW170608 :19 सौर-द्रव्यमान बाइनरी ब्लैक होल कोलेसेन्स का निरीक्षण है. GW170104: रेडशिफ्ट 0.2 पर 50-सौर-मास बाइनरी ब्लैक होल कोलेसेन्स का निरीक्षण है. GW151226: 22-सौर-मास बाइनरी ब्लैक होल कोलेसेन्स से गुरुत्वाकर्षण तरंगों का निरीक्षण है.

नोबेल पुरस्कार : 1993 में, खगोल भौतिकीविद रसेल हल्स और जोसेफ टेलर ने 1974 में पृथ्वी से 21,000 प्रकाश वर्ष न्यूट्रॉन सितारों की एक बाइनरी जोड़ी की खोज के लिए भौतिकी में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया. सात साल बाद, युगल में एक स्टार के एक साल के रेडियो उत्सर्जन को ट्रैक करने के बाद, टेलर और दो अन्य सहयोगियों (जोएल वेसबर्ग और ली फाउलर) ने ध्यान दिया कि दो सितारों के लिए एक दूसरे की परिक्रमा करने के लिए समय बिल्कुल घट रहा था इस तरह से सामान्य सापेक्षता की भविष्यवाणी की गई कि क्या दो सितारे गुरुत्वाकर्षण तरंगों को विकिरण कर रहे थे. अन्य बाइनरी न्यूट्रॉन स्टार सिस्टम के विश्लेषण ने इस प्रभाव का दृढ़ता से निष्कर्ष निकाला कि गुरुत्वाकर्षण तरंगें केवल सैद्धांतिक नहीं थी.

एलआईजीओ के तीन सबसे महानतम समर्थ को कैलटेक के बैरी बैरिश और किप थॉर्न और एमआईटी के रेनर वीस को भौतिकी में 2017 नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है. उन्हे यह पुरस्कार एलआईजीओ डिटेक्टर में निर्णायक योगदान और गुरुत्वाकर्षण तरंगों के अवलोकन के लिए दिया गया.

प्रोफेसर रोनाल्ड ड्रेवर छात्रवृत्ति : ग्लासगो स्कूल ऑफ फिजिक्स एंड खगोल विज्ञान विश्वविद्यालय ने प्रोफेसर रोनाल्ड ड्रेवर की संपत्ति से £ 500,000 की कमाई प्राप्त की है ताकि वह उनके नाम पर छात्रवृत्ति निधि कर सके. मार्च 2017 में निधन होने वाले प्रोफेसर ड्रेवर ने 1980 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में जाने से पहले ग्लासगो विश्वविद्यालय में गुरुत्वाकर्षण तरंग अनुसंधान की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, और एलआईजीओ की सहस्थापना की. अल्बर्ट आइंस्टीन द्वारा गुरुत्वाकर्षण तरंगों के अस्तित्व के प्रस्ताव के एक सदी के बाद, सितंबर 2015 में एलआईजीओ सहयोग के ऐतिहासिक गुरुत्वाकर्षण तरंगों की ऐतिहासिक पहचान के लिए उनके कुछ कार्यों ने नींव रखने में मदद की. भौतिकी और खगोल विज्ञान में प्रोफेसर रोनाल्ड ड्रेवर छात्रवृत्ति प्रत्येक वर्ष गुरुत्वाकर्षण अनुसंधानके लिए दी जाएगी.

सारांश : लीगो का उद्देश्य गुरुत्वाकर्षण तरंगों का पता लगाना हैं. खगोलीय घटनाओं के कंप्यूटर सिमुलेशन का अध्ययन करके, वैज्ञानिक यह पता लगा सकते हैं कि विभिन्न गुरुत्वाकर्षण तरंग स्रोतों से किस प्रकार के संकेतों की अपेक्षा की जा सकती है. गुरुत्वाकर्षण तरंगों की खोज से भौतिकी, खगोल विज्ञान, और खगोल भौतिकी में अत्याधुनिक अनुसंधान में वृद्धि होगी. भविष्य में ब्रह्मांड में और आगे पहुंचने और डाटा लेने में सक्षम होने के लिए एलआईजीओ और वर्गो डिटेक्टरों को वर्तमान में अपग्रेड किया जा रहा है. साथ ही प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक तरीकों में अपनी प्रगति के माध्यम से, एलआईजीओ विज्ञान के अन्य क्षेत्रों और व्यापक प्रौद्योगिकी उद्यम में भी योगदान देरहा है. इस प्रकार विज्ञान और तकनीकी दृष्टि से लीगो एक अद्वितीय परियोजना है.

चित्र सौजन्य : काल्टेक/एमआईटी/एलआईजीओ प्रयोगशाला (लीगोलिविंगस्टन,लीगोहनफोर्ड,लीगो भारत, काल्टेक,एमआईटी की वेबसाइटसे सामग्री संकलित)

जैविक खादों का उपयोग अत्यंत जरूरी

- डॉ सरोज शुक्ला
के ए 94/628, कुरमनचल नगर; लखनऊ 226016

बढ़ती आधुनिकता और ग्लोबल वार्मिंग ने जिन नई-नई बीमारियों को जन्म दिया है, उसमें रासायनिक खादों का बहुत बड़ा हाथ है. ऐसे में जैविक खादों का उपयोग अत्यंत जरूरी हो जाता है. एक दौर में खेती को बढ़ावा देने और अनाज की अधिक उपज के लिए जो वैज्ञानिक उर्वरक खादों के उपयोग पर जोर देते थे, वही वैज्ञानिक आज अनेक बीमारियों से बचने के लिए फसलों में जैविक खादों के प्रयोग पर बल दे रहे हैं. एक आंकड़े के अनुसार देश में पौष्टिक तत्वों की कुल खपत में रासायनिक खादों से उगाए गए खाद्य बाजारों में अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं. हरित क्रांति के बाद के युग में बहु पौष्टिक तत्वों में तकरीबन अस्सी प्रतिशत की कमी आई है और उसी क्रम में मानव स्वास्थ्य के साथ-साथ जीव-जंतुओं के स्वास्थ्य में तकरीबन 70 प्रतिशत की गिरावट आई है. इसके अलावा औसत आयु में काफी कमी आयी है. जैविक खेती कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग करती है. अगर भारत की बात करे तो आजादी से पहले पारम्परिक खेती जैविक तरीके से ही की जाती थी जिसमें किसी भी प्रकार के रसायन के बिना फसलें पैदा की जाती थी लेकिन आजादी के बाद भारत को फसलों के मामले में आत्मनिर्भर बनने के लिए हरित क्रान्ति की शुरुवात हुई जिसमें रसायनों और कीटनाशकों की मदद से उन फसलों का भी भरपूर मात्रा में उत्पादन किया जाने लगा जिसके बारे में कभी सोच भी नहीं सकते थे हरित क्रान्ति के कारण गेहूँ, ज्वार, बाजरा और मक्के की खेती में काफी विकास हुआ था. इस हरित क्रान्ति के दौरान 1962 के दशक में जहाँ प्रति हेक्टेयर 2.5 किलोग्राम रासायनिक उर्वरक का प्रयोग किया जाता था वहीं आज प्रति हेक्टेयर बढ़कर 120 किलोग्राम से भी ज्यादा हो चुका है तो सोचिये कि फसलों में कितना रसायन का उपयोग किया जा रहा है. हरित क्रान्ति के कारण जिस जैविक खेती को भारत बरसों से आजमा रहा था वो खत्म हो चुकी थी. वर्तमान की इस पारम्परिक खेती में हालांकि खाद्यानों का काफी उत्पादन हो रहा है लेकिन मृदा की उर्वरा शक्ति घटती जा रही है जिसके कारण कई खेत बंजर हो चुके हैं. जैविक खेती केवल जैविक अपशिष्ट, खेतों के अपशिष्ट, पशु अपशिष्ट, जैसे प्राकृतिक खादों का उपयोग करके किया जाता है. यह मूल रूप से मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ उसे अच्छा और उपजाऊ बनाने में भी मदद करती है. जैविक खेती में फसल परिक्रमण, मिश्रित फसल और जैविक कीट नियंत्रण आदि जैसे कुछ प्रक्रियाओं का पालन किया जाता है. वर्तमान में रासायनिक खेती के बढ़ते प्रभाव को देखकर वैज्ञानिको ने इसे घातक सिद्ध कर दिया जिससे ना केवल मृदा बल्कि इंसानों की सेहत पर भी उलटा प्रभाव पड़ रहा है. वर्तमान समय में रासायनिक खाद, कीटनाशकों के अत्याधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति समाप्त होते जा रही है जिससे किसानों क़े भविष्य प़र खतरा मंडराने लगा है. यदि समय रहते आवश्यक कदम नहीं उठाया गया तो किसानों के लिए भविष्य में भारी संकट उत्पन्न हो सकता है. पशु से जहां एक तरफ हमें दूध, दही, घी इत्यादि के रुप मे पौष्टिक आहार की प्राप्ति होती है दूसरी तरफ गौ मूत्र एवं गोबर भी उतना ही महत्वपूर्ण है. हमें अधिक से अधिक जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए. नाइट्रोजनी जैविक खाद वे जैविक खाद होती है जो मृदा में नाइट्रोजन की मात्रा को बढ़ाती है. प्रकृति में कई ऐसे जीवाणु और नील हरित शैवाल हैं जो वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करते हैं. राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, बेजरिंकिया, क़्लॉस्ट्रिडियम, रोडोस्पाइरिलम, हर्बास्पाइरिलम और एजोस्पाइरिलम नाइट्रोजन यौगिकीकरण करने वाले कुछ महत्वपूर्ण जीवाणु हैं. आज अनेको बीमारियों से पीड़ित लोगों को जैविक खेती से उपजी फसलों को खाने की हिदायत दी जाती है जिसके कारण कई किसानो ने जैविक खेती अपनाना शुरू कर दिया है. हालांकि अभी जैविक खेती बहुत ही छोटे स्तर पर हो रही है लेकिन अगर जागरूकता फैलाई जाए तो आने वाले समय में यह पारम्परिक खेती का रूप ले लेगी.

डायलिसिस के मरीजों के लिए तैयार हो रहा है कृत्रिम गुर्दे

- डॉ.दया शंकर त्रिपाठी
बी 2/63 सी.1 के ए, भदैना, वाराणसी

डायलिसिस एक दर्द भरा उपचार है परन्तु जीवन के लिए आवश्यक है. उम्मीद की जा रही है कि शीघ्र ही दुनिया का पहला कृत्रिम गुर्दा आगामी कुछ साल में डायलिसिस को विस्थापित कर देगा.

खाने पीने की गलत आदतें, अव्यवस्थित जीवनशैली, संक्रमित जल और वायु प्रदूषण के कारण गुर्दे के रोग बढ़ने लगे हैं. इसके लिए डॉक्टर कई बार डायलिसिस करवाते हैं और रोग गंभीर हो जाने पर किडनी दान लेने की भी नौबत आ जाती है. हमारे शरीर में गुर्दों का काम शरीर में खून साफ करना, नया खून बनाना, रक्तचाप, रक्तकोशिकायें, पानी और कैल्शियम का संतुलन बनाए रखना है, जिससे शरीर से विषैले पदार्थ बाहर निकल जाते हैं. ये गुर्दे खून साफ करके उसमें मौजूद विषैले पदार्थों को पेशाब के रास्ते से शरीर से बाहर निकाल देती है. लाल रक्त कणिकाओं को बनाने वाले हार्मोन को सुचारु बनाए रखना भी गुर्दों का काम है. ऐसा होने की वजह से ही हम स्वस्थ रहते हैं. किडनी के ठीक से काम न करने के कारण उनमें संक्रमण (इंफेक्शन) हो जाता है, जिससे दूसरी बीमारियाँ भी पैदा हो सकती हैं.

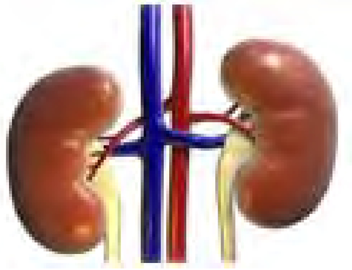

आधुनिक चिकित्सक विज्ञान के अनुसार आँख के नीचे की पलकें फूली हुई, पानी से भरी एवं भारी दिखती हैं. जीवन में चेतनता, स्फूर्ति तथा उत्साह में कमी आ जाती है. सुबह बिस्तर से उठते वक्त स्फूर्ति के बदले आलस्य एवं बेचैनी महसूस होती है. थोड़े परिश्रम से ही थकान होने लगती है. कभी-कभी श्वास लेने में तकलीफ महसूस होती है. तो कमी कमजोरी महसूस होती है. भूख कम होती जाती है. सिर दुखने लगता है अथवा चक्कर आने लगते हैं. अक्सर वजन घटने लगता है. पैरों अथवा शरीर के दूसरे भागों पर सूजन आ जाती है. कभी-कभी जलोदर हो जाता है तो कभी उल्टी-मिचली जैसा महसूस होने लगता है. रक्तचाप बढ़ जाता है. पेशाब में एल्ब्यूमिन आने लगता है.

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के एक दल जिसमें भारतीय वैज्ञानिक शुवो रॉय भी शामिल हैं, ने शरीर में प्रत्यारोपित की जाने वाली दुनिया की पहली कृत्रिम गुर्दा तकनीक विकसित की है. उनके जैव-संकर दृष्टिकोण रक्त प्रवाह से अपशिष्ट को छानने के लिए मानव हृदय द्वारा संचालित विशेषीकृत माइक्रोचिप्स की एक शृंखला के साथ मिलकर गुर्दे की जीवित कोशिकाओं का उपयोग करेंगे.

नेशनल किडनी फाउंडेशन का अनुमान है कि गुर्दा प्रत्यारोपण के लिए दाता गुर्दा (डोनर किडनी) की प्रतीक्षा सूची बहुत लम्बी है और इस सूची में 1,00,000 से अधिक मरीज हैं. प्रत्येक वर्ष 3000 से अधिक नाम इसमें जुड़ते जाते हैं. गुर्दा प्रत्यारोपण के इंतजार में प्रत्येक रोगी को औसतन 3.6 वर्ष इंतजार करना पड़ता है. ऐसे इंतजार कर रहे मरीजों का इलाज डायलिसिस के साथ किया जा सकता है. परन्तु देखा गया है कि डायलिसिस वाले से उपचार पानेवाले तीन मरीजों में से मात्र एक मरीज ही बिना प्रत्यारोपण के पाँच साल से अधिक जीवित रह पाता है.

जीवित या मृतक गुर्दा दाताओं से प्राप्त प्रत्यारोपित गुर्दों को शरीर ऊत्तक अस्वीकृति से बचने के लिए सावधानी से इनका मिलान किया जाता है. यह कृत्रिम समाधान संभावित रूप से इन जटिलताओं से छुटकारा दिला सकता है और जरूरत के अनुसार इसे निर्मित किया जा सकता है. इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए, वेंडरबिल्ट के विलियम फिशेल और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, सैन फ्रांसिस्को (यूसीएसएफ) के शुवो रॉय ने 'द किडनी प्रोजेक्ट' चला रहे

हैं.

रिसर्च न्यूज/वेंडरबिल्ट में प्रकाशित अपने शोध पत्र में वैज्ञानिक फिशेल ने लिखा है कि "हम प्रकृति के छ करोड़ (60 मिलियन) वर्षों के अनुसंधान और विकास का लाभ उठा सकते हैं और गुर्दे की कोशिकाओं का उपयोग कर सकते हैं जो सौभाग्य से हमारी प्रयोगशाला में अच्छी तरह से पनपते हैं और उन्हें जीवित कोशिकाओं के जैव अभिक्रियापात्र (बायोरिएक्टर) में विकसित कर सकते हैं". फिशेल ने डिवाइस को "सांता क़्लॉज सिस्टम" के नाम से वर्णित किया है, क्योंकि यह अपशिष्ट रसायनों और शरीर को पुनर्शोषित करने वाले पोषक तत्वों के बीच अच्छी तरह से अंतर कर सकता है.

दुनिया की पहली बायोनिक किडनी को एक सामान्य शल्य प्रक्रिया द्वारा शरीर के भीतर प्रविष्ट किया जा सकता है और यह कुशलता से काम करने वाला साबित हुआ है. अब यह क्षतिग्रस्त किडनी के लिए उत्तम प्रतिस्थापन सिद्ध हो रहा है. बायोनिक किडनी में कई माइक्रोचिप्स होते हैं जो हृदय द्वारा संचालित किये जाते हैं. बायोनिक किडनी एक सामान्य गुर्दे की तरह ही रक्त से विषाक्त पदार्थों को छानकर बाहर निकालते हैं.

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के गुर्दा अनुसंधान दल के सदस्य शुवो रॉय और वेंडरबिल्ट यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर के नफ्रोलॉजिस्ट और एसोसिएट प्रोफेसर विलियम एच फिसल ने शोधपत्र में बताया है कि यह आविष्कार खराब किडनी वाले लाखों पीड़ितों और डायलिसिस पर चलने वाले मरीजों के लिए हर तरह से वरदान है.

यह नैनोप्रौद्योगिकी द्वारा बनाया गया माइक्रोचिप (सूक्ष्म इलेक्ट्रानिक परिपथ) है. प्रत्येक किडनी में 15 माइक्रोचिप होंगे जो एक के ऊपर एक करके लगाये जायेंगे. वे एक छन्नी (फिल्टर) की तरह कार्य करेंगे और जीवित गुर्दे की कोशिकाओं को पकड़े रहेंगे. ये कोशिकायें उन माइक्रोचिप्स के चारों तरफ बढ़ने और फैलने का अपना रास्ता खोज लेंगी. एक तरह से कहा जा सकता है कि वे असली गुर्दे की नकल करेंगी.

वैज्ञानिकद्वय ने लिखा है कि हमारा प्राथमिक लक्ष्य यंत्र (डिवाइस) के माध्यम से एक सतत् रक्त प्रवाह को बनाए रखना है. हमारे अभियंतागण इस उपकरण के हर एक पहलू पर कार्य कर रहे हैं और परीक्षण भी कर रहे हैं, जिससे सुनिश्चित किया जा सके कि यह उपकरण सुरक्षित रूप से रक्त प्रवाह को बिना थक्का जमे या बिना कोई क्षति पहुँचाये कार्य कर सकता है.

अब तक, यह विधि मानव दाता से प्राप्त गुर्दा प्रत्यारोपण की तुलना में काफी बेहतर सिद्ध हुआ है. इसमें अस्वीकृति कारक की संभावना एकदम नहीं है. गुर्दे की कोशिकाओं के साथ नवीनतम आविष्कार लगभग पूरी तरह से नया है, और इसका मूलरूप (प्रोटोटाइप) एक कॉफी कप के आकार का है. यह स्वस्थ किडनी की तरह ही सब कार्य करता है और यहाँ तक कि यह रक्तचाप को भी नियंत्रित करता है, तथा सभी विषाक्त पदार्थों (जैसे दवाएँ और पूरक आहार आदि) को भी छान देता है.

हालाँकि, कृत्रिम गुर्दा कोई नई चीज नहीं है. अतीत में भी कुछ प्रयोग हुए हैं. कुछ साल पहले, वैज्ञानिकों की एक टीम ने कुछ जानवरों में कृत्रिम गुर्दे का सफल प्रत्यारोपण किया था जिससे पेशाब का उत्पादन होने लगा था. परन्तु, इससे वैज्ञानिक संतुष्ट नहीं थे. वैज्ञानिकों ने एक पुराने गुर्दे का इस्तेमाल किया था, जिसे उन्होंने एक छत्ते जैसा साँचा प्राप्त करने के लिए सभी अवांछितों को कोशिकाओं से साफ किया था. फिर उन्होंने दाता की कोशिकाओं का उपयोग करके गुर्दे को पुनर्निर्मित किया. प्रयोगशालयी परीक्षणों ने पुष्टि की कि एक कृत्रिम गुर्दा लगभग 23 प्रतिशत मूत्र का उत्पादन कर सकता है. हालाँकि, जब उन्होंने उस प्रकार के गुर्दे को चूहे में स्थापित किया, तो उससे केवल 5 प्रतिशत ही मूत्र का उत्पादन हुआ. यद्यपि संतोष की बात यह थी कि वह एक अच्छी शुरुआत थी.

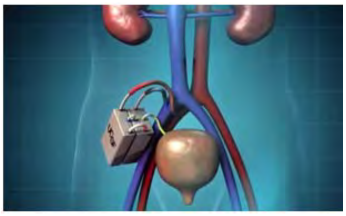

यद्यपि, उस समय तक मानव पर कोई भी परीक्षण नहीं हुआ था. फिर भी, हमारे वैज्ञानिक हमें आश्वस्त कर रहे हैं कि बायोनिक किडनी में अस्वीकृति की संभावना पूर्णतया से शून्य है.

प्रत्यारोपणयोग्य कृत्रिम गुर्दा इस रोग से पीड़ित रोगियों के लिए एक नई आशा की किरण बनकर उभरी है. यूसीएसएफ (यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, सैन फ्रांसिस्को) बायो इंजीनियरिंग के प्रोफेसर शुवो रॉय कृत्रिम गुर्दा विकसित कर रहे हैं जो दुनियाभर के लाखों लोगों की देखभाल में क्रांति लायेगा और नवजीवन प्रदान करेगा. यह इम्प्लांटेबल डिवाइस गुर्दे की विफलता वाले उन लोगों के लिए राहत प्रदान करेगा जो डायलिसिस पर चल रहे हैं अथवा जीवन रक्षक अंग प्रत्यारोपण के लिए प्रतीक्षा सूची में इंतजार कर रहे हैं.

हमारा पर्यावरण

- कल्पना सागर
एडवोकेट, हाईकोर्ट इलाहाबाद

पर्यावरण शब्दों का निर्माण दो शब्दो से मिलकर बना है - 'परि' और 'आवरण' अर्थात वह आवरण जो हमें चारों ओर से घेरे हुआ है उसे पर्यावरण कहते है. हर साल 5 जून को पर्यावरण दिवस मनाया जाता है. यह दिवस संयुक्त राष्ट्र द्वारा राजनैतिक और सामाजिक जागृति लाने के लिये घोषित किया गया है. सबसे पहला पर्यावरण दिवस 5 जून 1973 को मनाया गया था. पर्यावरण में जैविक जैसे कि जीवाणु, कीड़े मकोड़े, पेड़ पौधों से लेकर हम सभी इंसान शामिल हैं. जबकि अजैविक तत्वों में निर्जीव तत्व जैसे पर्वत, चट्टानें नदी आदि शामिल हैं.मनुष्य द्वारा की जाने वाली सारी क्रियाएँ पर्यावरण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं.

विज्ञान की प्रगति के साथ पर्यावरण समस्या : विज्ञान के क्षेत्र में असीमित प्रगति का असर पर्यावरण पर पड़ा है. आज मानव विज्ञान के क्षेत्र में नये-नये आविष्कार कर रहा

है. और इन आविष्कारों के द्वारा वह प्रकृति पर पूर्णतया विजय प्राप्त करना चाहता है. इस कारण प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है. धरती पर जनसंख्या वृद्धि का असर भी पर्यावरण पर रहा है. औद्योगीकरण तथा शहरीकरण की तीव्र गति प्रकृति के हरे भरे क्षेत्रों को समाप्त कर रही है. हमारी पृथ्वी पर पेड़-पौधे, हवा, पानी है तो हम हैं. आज इंसान पृथ्वी पर बहुत ज्यादा अन्याय कर रहा है. दुनिया कंक्रीट की होती जा रही है. पेड़-पौधे काटे जा रहे हैं. जिसके कारण वर्षा कम हो गयी है, सूखा पड़ रहा है. आज धरती पर सबसे बड़ी समस्या जल की है. आज हमें बारिश के पानी को संग्रहित करने की आवश्यकता है. इसके लिये हमें बड़े स्तर पर तालाब, पोखर बनाने की जरुरत है. आज समूचा विश्व जलसंकट की समस्या से गुजर रहा है. आज हमें जल को संग्रहित करने के लिये बड़े स्तर पर वाटर हारवेस्टिंग, कंजर्वेशन और मेनेजमेंट पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है. जिससे कि पानी को हम संग्रहित कर सकें तथा संग्रहित किया गया जल हमारी खेती के काम आ सके.

हमने जो धरती से लिया है वह धरती को वापस करना पड़ेगा अगर नहीं किया तो धरती पर असंतुलन पैदा हो जायेगा.

आजकल वाटर मेनेजमेंटको लेकर कई संस्थान बहुत सारे कोर्सेस चला रहें हैं. जिसमे वाटर साइंटिस्ट, वाटर मेनेजर, हाइड्रो जियोलाजिस्ट, बायोलाजिस्ट, वाटर कंजरबेशनिस्ट आदि बनाने के मौके बढ़ गए हैं. बड़े-बड़े उद्योगों में पानी की रिसाइकिलिंग और पानी की रियूज के लिए वाटर मेनेजर की आवश्यकता पड़ती है. जल की आवश्यकता पर श्री बीरेन्द्र सिंह ब्रजवासी जी की एक कविता याद आ रही है जो निम्नलिखित है.

जल जीवन है जीवन जल है, जल से ही जीवित हर पल है'

जल की बचत करोगे तब ही, जीवन को मिल पाता कल है.

जल विन मर जाती मुसकानें, कैसा गीत कहाँ की ताने,
बूंद - बूंद से मरे सरावेर, इसकी परम्शक्ती को जानें,
जल की बरबादी को रोकें, इसमें हर मुश्किल का हटा दे.
जल जीवन है.
जल में ही अस्तित्व छुपा है, मोटों, मानुष और माटी का,
जल बिन कोई मूल्य नहीं है, धरा, मेघ, जंगल, घाटी का,
जल के बिन सारे की सारा, कठिन परिश्रम भी निष्फल है,
जल जीवन है.
पशु पक्षी उतना जल पीते, जीतने में वे सुख से जीते,
पर मानव अभिमानी बनकर, करता ताल तलैया रीते,
केवल अपनी सुख सुविधा में, भूल गया सबका मंगल है,
जल जीवन है.
कब तक मनमानी कर लोगे, धरती के सुख से खेलोगे,
औरों के हिस्से का पानी, पीकर तुम कब तक जीलोगे,
अभी समय है आंखे खोलों, नहीं जागे तो मुश्किल पल है.
जल जीवन है.

पर्यावरण संरक्षण : आज प्रदूषण के कारण सारी धरती प्रदूषित हो रही है और ऐसा ही रहा तो मानव सभ्यता का अंत निश्चित है. पर्यावरण प्रदूषण के बहुत से दुष्प्रभाव है जो अत्यंत घातक है; जैसे परमाणु विस्फोटों से वायुमंडल का तापमान बढ़ना, ओज़ोन परत का क्षतिज होना, मक्षरण आदि. पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुए 1992 में ब्राज़ील में एक 'पृथ्वी सम्मेलन' आयोजित किया गया जिसमें विश्व के 174 देशों ने हिस्सा लिया. इसके बाद सन 2002 में जोहान्सवर्ग में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किया गया. जिसमें पर्यावरण संरक्षण पर अनेक उपाय सुझाए गए.

पर्यावरण संरक्षण के उपाय : हमें अपने पर्यावरण को बेहतर बनाना चाहिए, इसके लिए सबसे पहले हमें जल को बचाना पड़ेगा. फैक्ट्रियों का गंदा पानी नदियों में न जाये इसका विशेष ध्यान रखना पड़ेगा. कारखानों का गंदा पानी सीवर लाइन के गंदे पानी को नदियों में जाने से रोकना होगा, जिससे कि हम इंसान और समस्त प्राणीजगत गंदे पानी से होने वाली बीमारियों से बच सकें. प्रदूषित पानी को हम अपनी खेती में न डालें.हमें अपने बच्चों को पर्यावरण सुरक्षा पर समुचित ज्ञान समय-समय पर देते रहना चाहिए. उनको पर्यावरण के बारे में जानकारी दे.

जल प्रदूषण के साथ-साथ वायु प्रदूषण ने भी हमारे पर्यावरण को बहुत हानि पहुंचाई हैं. बड़े-बड़े कारखानों की चिमनियों से निकले गंदे धुएं, ए.सी. इनवर्टर, जैनरेटर आदि से निकली कार्बन डाइआक्साइड, नाइट्रोजन आदि गैसे वायुमंडल में घुलती रहती है. जिससे कि हमारा वायुमंडल प्रदूषित होता रहता है. ध्वनि प्रदूषण भी पर्यावरण को प्रदूषित करता है. बच्चे के जन्म की खुशी, शादी पार्टी आदि में डी.जे. आवश्यक हो गया है इन सभी ध्वनि प्रदूषण से भी हमारी धरती प्रदूषित हो रही है.

आज हमारे मानसून-चक्र में परिवर्तन हो गया है, सुनामी, अतिवृष्टि जैसे दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं.

सभी प्रकार के प्रदूषण से बचने के लिए बड़े स्तरपर प्रयास करने की आवश्यकता है.

NEEPCO (नीपको) - North Eastern Electric Power Corporation को भारत के उत्तर पूर्व में पर्यावरण पर बहुत ध्यान देता है.वहाँ वन क्षेत्र ज्यादा होने के कारण यहाँ के लोग वनों पर आश्रित है. यह लोग प्राकृतिक संसाधनों की उपयोगिता जानते हैं.

पर्यावरणकानून (Environmental Laws): आज देश में पर्यावरण का द्रुत गति से क्षय हो रहा है. ऐसे में पर्यावरण संरक्षण के लिए कानून का बनाया जाना आवश्यक है. पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रभावशाली क़ानूनों को बनाया जाना चाहिये. क्योंकि देश की बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण का अधिक दोहन करेगी, जिससे पर्यावरण बहुत प्रदूषित हो जायेगा. ऐसे में कानून को प्रभावशाली ढंग से लागू करना बहुत आवश्यक है.

जंगल के माफिया ग्रुप, शिकारी लोग, वनों को बहुत नुकसान पहुंचाते हैं. इसलिए पर्यावरण सम्बन्धी कानून केवल राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी जरूरी है. भारतीय संविधान के अनुच्छेद - 51A में 42 वां संशोधन पर्यावरण के लिए है, जो कि उसके सुधार पर ज़ोर देता है.

देश के वनों के लिए अनुच्छेद 48-A में स्पष्ट किया गया है कि पर्यावरण का बचाव व सुधार किया जाये. 1998 के कानून के संशोधन को सख्ती से लागू किया गया. जिसमें गलत काम करने वाले उद्योगों को बंद किया जाएगा.

पर्यावरण बचाव कानून सन् 1986 एक महत्तवपूर्ण कानून है. जिसमें केंद्र सरकार को पर्यावरण नियंत्रण का पूरा अधिकार प्राप्त है.

पर्यावरण प्रदूषण से निपटने के लिए आजकल 'ग्रीन होम' पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है. ग्रीन होम में बिजली की खपत कम होती है. जिसमें बिजली की मांग को सोलर पेनल के द्वारा कम किया जाता है. ग्रीन होम में अच्छी आबोहबा आती है. हम जितना प्रकृति के करीब जाते है वह भी हमारे उतना ही करीब आती है.

माइग्रेनः अत्यंत कष्टदायक सरदर्द

- मंजुलिका लक्ष्मी
'अनुकम्पा',वाई 2 सी 115/6, त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद-19(उ.प्र.)

माइग्रेन अथवा अधकपारी के नाम से पहचाने जाने वाले सरदर्द के विषय में लंबे समय से चिकित्सक और वैज्ञानिक शोधरत हैं. सरदर्द का यह स्वरूप व्यक्ति को एक आकस्मिक दौरे के रूप में ग्रस्त करता है और दर्द की तीव्रता व्यक्ति को बिल्कुल अशक्त और बेहाल कर देती है. भले ही सामान्य भाषा में इसे अधकपारी के नाम से ही अधिक जाना जाता है परन्तु कभी कभी यह दर्द आधे सिर में ही न होकर दोनों तरफ भी होता है. इसके प्रकोप से ग्रस्त व्यक्ति सर की असहनीय पीड़ा के साथ साथ पेट की गड़बड़ियों या उल्टियों का भी शिकार हो जाता है. कभी कभी तो दर्द की भीषणता उसकी दृष्टि क्षमता को भी बाधित कर देती है. स्पष्ट है कि माइग्रेन सामान्य सरदर्द से भिन्न होता है. अधिकांशतः इसका प्रकोप आकस्मिक होता है पर सामान्यतः यह माना जाता है कि इसके आरंभ के मूल में किसी न किसी प्रकार का मानसिक तनाव ही उत्तरदायी होता है. कुछ लोगों में यह कभी-कभी आक्रमण करता है पर कुछ अन्य लोगों पर तो यह नियमित रूप से हर महीने दो चार दिनों के लिए अपना धावा बोलता रहता है.

व्यक्ति को अपनी तीव्रता से लाचार बना देने वाला यह सरदर्द सामान्य दर्द न प्रतीत होकर ऐसा लगता है जैसे सर में बारंबार किसी वस्तु से आघात किया जा रहा हो. इसका आक्रमण कभी कभी एक दो घंटों का ही होता है पर कभी

कभी तीन से चार दिन तक अपनी पूरी तीव्रता के साथ रोगी को कष्ट देता रहता है. दर्द की तीव्रता व्यक्ति को कभी कभी हल्की से हल्की ध्वनि या प्रकाश के प्रति भी बेहद संवेदनशील बना देती है. अक्सर चिकित्सक इसके दौरे के प्रारंभ का संबंध किसी विशेष खादय पदार्थ के लिए प्रत्यूर्जता या शरीर की अग्रहणशीलता के साथ अथवा व्यक्ति की निद्रा की कमी या तत्संबंधी किसी अन्य समस्या के साथ जोड़ते हैं.

माइग्रेन की पीड़ा शारीरिक सक्रियता के बढ़ने पर और अधिक तीव्र हो जाती है. इससे ग्रस्त लगभग एक तिहाई लोगों को इसके दौरे के पूर्व कुछ संकेत मिल जाता है. अक्सर उसे दृष्टि क्षमता में कुछ बाधा या धुँधलापन महसूस होने लगता है, जिससे उसे आभास हो जाता है कि दौरा पड़ने वाला है. अक्सर माइग्रेन का कष्ट आनुवंशिक होने के कारण परिवारों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित भी हो जाता है. लगभग दो तिहाई रोगग्रस्त लोगों की संख्या ऐसी ही होती है. किशोरावस्था में जब बालक बालिकाओं में गर्भधारण की अवस्था के पूर्व शरीर में हारमोनों का परिवर्तन होने लगता है तब इसका प्रकोप बढ़ता है और देखा गया है कि संभवतः इसी कारण यह लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में अधिक पाया जाता है. यह भी एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि महिलाओं की गर्भावस्था की अवधि में इसका प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है. यद्यपि इसके पीछे क्या विशेष कारण है यह अभी स्पष्ट नहीं है.

माइग्रेन का दर्द अपने बहुचर्चित स्वरूप में एक पार्श्विक, धमकदार और धीरे धीरे तीव्रता की ओर बढ़ने वाला दर्द होता है. पूरे सिर में होने वाला माइग्रेन उन लोगों को ग्रस्त करता है जो 'ऑरा' वाली पूर्वस्थिति का अनुभव नहीं करते. कुछ ही ऐसे लोग होते हैं जिनमें दर्द की शुरूआत सिर के पीछे के भाग से होती है. वयस्कों में यह पीड़ा 4 घंटे से लेकर 72 घंटों तक बने रहने के प्रमाण मिलते हैं. किन्तु छोटे बच्चों में यह एक घंटे से कम अवधि की ही होती है. इसके आक्रमण का अंतराल भी कुछ लोगों में एक ही सप्ताह में कई बार से लेकर किसी किसी में पूरे जीवनकाल में दो चार बार ही होता है. सामान्यतः लोगों में यह एक मास में एक बार ही आता है. पीड़ा के दौरान अधिकांश लोग वमन, मितली,चिड़चिड़ेपन, प्रकाश ,ध्वनि और गंधों के प्रति अति संवेदनशीलता से पीड़ित होते हैं. अक्सर लोगों को सब कुछ घूमता हुआ और किंकर्तव्यविमूढ़ता का अनुभव होने लगता है. फलस्वरूप अधिकांश रोगी अँधेरे कमरों में चुपचाप पड़े रहना ही पसंद करते हैं. कुछ अति संवेदनशील रोगियों में बहुमूत्रता,शरीर और चेहरे का फीकापन और अधिक स्वेद का आना, गर्दन की अकड़न और सिर में सूजन जैसे लक्षण भी देखे गए हैं. यह भी एक विचित्र तथ्य है कि यह संबद्ध लक्षण वयोवृद्ध लोगों को कम परेशान करते हैं.

सर्वेक्षणों के अनुसार पूरे विश्व की लगभग 15 प्रतिशत आबादी माइग्रेन की पीड़ा से ग्रसित कही जाती है. 1500 ईसा पूर्व के मिस्र से प्राप्त 'एबर्स पैपीरस' में अंकित कुछ तथ्यों के एक अंश में जो वर्णन है उसमें और माइग्रेन की स्थिति में बहुत साम्यता पाई गई है. अंग्रेजी के माइग्रेन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द हेमिक्रेनिया सिर के एक पार्श्व में होने वाला दर्द से हुई मानी गयी है, जिसमें 'हेमी' का अर्थ है अर्द्ध और क्रेनिया का अर्थ है- कपाल या शिर.

माइग्रेन पीड़ा की इन स्थितियों को चिकित्सकीय स्तर पर चार भागों में विभाजित किया गया है. सर्वप्रथम है प्रोड्रोम जो स्थिति माइग्रेन दौरे के कुछ घंटों या कभी कुछ दिनों पूर्व अनुभव की जाती है. दूसरी स्थिति 'ऑरा' की कहलाती है जो इस सरदर्द के प्रारंभ होने के तत्काल पहले की स्थिति है. तीसरी स्थिति पीड़ा की उस यन्त्रणादायी अवस्था की है जिसमें व्यक्ति जो पहले से ही अस्वस्थता अनुभव कर रहा है अब दर्द की तीव्रता से बिल्कुल बेहाल हो जाता है. इसके पश्चात आती है चौथी अवस्था जो पोस्टड्रोम की स्थिति कही जाती है, जिसे व्यक्ति पीड़ा की वास्तविक यंत्रणा की समाप्ति के बाद के प्रभावों के रूप में अनुभव करता है. अक्सर प्रोड्रोम या पूर्व संकेत की स्थिति की अवधि अलग अलग लोगों में दो घटों से दो दिनों तक भी हो सकती है. इसमें मनस्थिति का बारंबार परिवर्तन, चिड़चिड़ापन, अवसाद अथवा अति प्रसनन्ता, भारी थकान और किसी विशेष वस्तु को खाने की तीव्र आकांक्षा जैसी स्थितियाँ अलग अलग लोगों में, अलग अलग रूपों में प्रकट होती हैं. मांसपेशियों में जकड़न,मलावरोध,अतिसार और विशेष सुगंधों या ध्वनि तथा प्रकाश के प्रति अति संवेदनशीलता इसके अन्य पूर्व लक्षण है.

इसके पश्चात् आती है 'ऑरा' की वह स्थिति जिसमें स्नायु तंत्रों में समस्या और दृष्टिबाधा जैसी स्थितियों का अनुभव रोगी द्वारा किया जाता है. यह दृष्टि को केन्द्रित करने की अक्षमता और स्नायु तंत्रों की अव्यवस्था की एक अस्थायी स्थिति है. यह कुछ मिनटों के लिए आक्रमण करता है और सामान्यतया एक घंटे से पूर्व ही समाप्त हो जाता है. यह लक्षण दृष्टि संबंधी, संवेदना संबंधी और स्नायविक नियन्त्रण संबंधी- तीनों ही प्रकार के हो सकते हैं और अधिकांश रोगी इन तीनों का ही अनुभव करते हैं. फिर भी

अधिकांशतः दृष्टिबाधा संबंधी लक्षण ही अनुभव किए जाते हैं. दृष्टि बाधा की कठिनाई में 'सिन्टिलेटिंग स्कोटोमा' की एक ऐसी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है जिसमें दृष्टि के हिलने या कंपन की स्थिति में व्यक्ति पढ़ने, वाहन चलाने या दृष्टि को केन्द्रित करने वाले अन्य कार्यों से विवश हो जाता है. यह तकलीफ़ दृष्टि क्षेत्र के मध्य से प्रारंभ होकर किनारों की ओर फैल जाती है. इस दृष्टि-अक्षमता में वस्तुएँ कटी फटी रेखाओं में दिखाई देती हैं, बिल्कुल जैसे किलों के ऊपरी कंगूरेदार आकार होते हैं. यह श्वेत श्याम रेखाएँ होती हैं पर कुछ व्यक्तियों में ये रंगयुक्त भी हो सकती हैं. कुछ लोगों में दृष्टि शक्ति आंशिक रूप से पूर्णतया अक्षम हो जाती है जबकि कुछ अन्य लोग केवल धुँधलेपन का ही अनुभव करते हैं.

संवेदनात्मक अक्षमताओं संबंधी 'ऑरा' की यह स्थिति 30 से 40 प्रतिशत लोगों में देखी जाती हैं. किसी किसी में हथेलियों, भुजाओं और नाक में तथा मुख के आस पास सुई या पिन के चुभने जैसी संवेदना अनुभव की जाती है, पर यह सब शरीर की एक ही दिशा की ओर होता है. इस चुभने की अनुभूति के बाद संवेदनहीनता या सुन्न पड़ जाने की एक दूसरी स्थिति घेर लेती है. कभी कुछ लोग बोलने या भाषा संबंधी अक्षमता का भी अनुभव करते हैं. जिसमें स्नायविक नियंत्रण संबंधी कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं उसको हेमिप्लेजिक माइग्रेन का नाम दिया गया है. इसके प्रकोप के बाद व्यक्ति अत्यधिक दूर्बलता का अनुभव करता है. कुछ लोगों में कुछ काल्पनिक ध्वनियों को सुनने की स्थिति भी देखी गई है.

माइग्रेन के दौरे के समाप्ति के बाद वाली स्थिति को चिकित्सकों ने पोस्टड्रोम का नाम दिया है. यह पीड़ा की तीव्रता के मंद हो जाने की स्थिति है. इसमें अधिकांश लोग पीड़ित स्थान पर एक कच्चे घाव जैसी पीड़ा का अनुभव करते हैं. यहाँ तक कि कुछ लोग तो दौरे के कुछ दिनों बाद तक अपनी सोचने समझने की क्षमता में कुछ कमी महसूस करने लगते हैं. थकान, सुस्ती और दुर्बलता तथा शरीर की शक्ति के निचुड़ जाने का आभास तो प्रायः सभी करते हैं. वस्तुओं की पहचान की क्षमता में कमी, मनःस्थितियों का आकस्मिक परिवर्तन या अत्यधिक हर्ष या अवसाद की स्थितियाँ भी देखी गई हैं. यही नहीं कुछ व्यक्तियों में तो बाद की ये समस्याएं भी हर दौरे के बाद भिन्न भिन्न देखी जाती है.

सबसे दुर्भाग्य की बात यह है कि माइग्रेन की इस यंत्रणादायक पीड़ा के सही कारण का निदान कर पाना अभी भी चिकित्सकों की क्षमता के बाहर है. वातावरण और आनुवंशिक कारकों को ही मोटे तौर पर अब तक इसका उत्तरदायी ठहराया जाता रहा है और अधिकांशतः यह परिवार में एक से दूसरी पीढ़ी के किसी न किसी व्यक्ति में स्थानान्तरित होता चलता है. फिर भी किसी एक जीन की त्रुटि को इसका कारण नहीं माना जा सकता. पहले यह भी समझा जाता था कि उच्च बौद्धिक क्षमता वालों पर इसका प्रकोप अधिक होता है पर यह सही नहीं पाया गया. इसके प्रकोप के पीछे कई मनोवैज्ञानिक कारणों की भी भूमिका बताई गई है.

माइग्रेन संबंधी शोधों के दौरान परिवार में चलने वाले माइग्रेन के प्रकोप के कारणस्वरूप चार जीनों की पहचान की गई है. इनमें से तीन जीन आयन के संचरण से संबंधित हैं. एक चौथा जीन एक प्रकार का एक्ज़ोनल प्रोटीन है. इसके प्रकोप को उत्तेजित करने वाले कारकों के रूप में थकान, मौसम परिवर्तन और कुछ विशेष खाद्य पदार्थों के नाम लिए जाते हैं किन्तु इनके संबंधों को अभी निश्चित रूप से सिद्ध नहीं किया जा सका है. महिलाओं में माइग्रेन का दौरा अक्सर उनके मासिकधर्म-चक्र से संबद्ध होता है. प्रथम रजोदर्शन, मौखिक गर्भनिरोधक का उपयोग,गर्भावस्था और रजोनिवृत्ति की स्थितियों में शरीर में होने वाले हारमोनों के परिवर्तन भी इस दौरे को उत्तेजित करने के कारण बन सकते हैं. रजोनिवृत्ति के पश्चात माइग्रेन के प्रकोप की संभावना एक बड़ी सीमा तक कम हो जाती है. खाद्य पदार्थों के कारण बनने की चर्चा अक्सर की जाती है परंतु इसके पक्ष में भी पुष्ट प्रमाण नहीं है. इस संबंध में टाइरेमाइन या मोनो एम एस जी को बारंबार दोषी कहा गया है पर उनके विरुद्ध सिद्ध प्रमाण अपर्याप्त हैं.

माइग्रेन एक स्नायविक जैविक विकार (न्यूरोबाइलॉजिकल डिसआर्डर) है जिसमें माइग्रेन के दौरों की अवधि में होने वाले न्यूरोलॉजिकल और वैस्कुलर दोनों प्रकार के परिवर्तन शामिल होते हैं. कुछ ऐसे व्यक्ति भी होते हैं जो मस्तिष्क की पीड़ा की अनुभूति वाले केन्द्रों को शीघ्रता से सक्रिय कर देने की दुर्बलता की ओर आनुवंशिक रूप से पूर्वप्रवृत्त होते हैं, वे पीड़ा उत्पन्न करने वाले प्रेरकों के प्रति भी अत्यधिक संवेदनशील होते हैं. इस बात के प्रमाण पुष्ट हो चुके हैं कि यह तंत्रिका तन्त्र से संबंधित विकार है जो मस्तिष्क से आरंभ हो कर रक्त में संचारित होता है. इस विषय में मतभेद है कि इसमें तंत्रिका संबंधी व्यवस्था की भूमिका अधिक है या रक्तवाहिनियों की या दोनों ही बराबर की जिम्मेदार हैं? अधिकांशतः न्यूरोट्रांसमिटर सेरोटोनिन के उच्च स्तर की, जिसे दूसरे शब्दों में 5-हाइड्रॉक्सीट्रिप्टेमाइन भी कहा जाता है, अधिक महत्वपूर्ण

भूमिका मानी गई है.

चिकित्सक माइग्रेन का निदान अधिकांशतः लक्षणों और चिन्हों के आधार पर ही करते हैं. सामान्यतः इसके लिए न्यूरोइमैजिंग परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती. यदि किसी में दर्द की तीव्रता के साथ ही प्रकाश और ध्वनि के प्रति असहनशीलता,वमन और मितली तथा कार्य करने या किसी विषय पर केन्द्रित करने में अत्यधिक कठिनाई हो तो उसके माइग्रेनग्रस्त होने की संभावना 92 प्रतिशत तक होती है. विशेषज्ञों द्वारा माइग्रेन के कुछ प्रकारों का भी वर्गीकरण किया गया है जिन्हें 'कॉमन माइग्रेन', 'क़्लासिक माइग्रेन' 'फैमिलियल हेमिप्लेजिक माइग्रेन' जैसे नाम दिए गए हैं. इनका एक प्रकार 'एबडॉमिनल माइग्रेन' भी बताया जाता है, यद्यपि इसके संबंध में अभी विशेषज्ञों में विवाद है. इसमें सर दर्द के अभाव किन्तु बार बार होने वाले पेट दर्द को ही एक प्रकार के माइग्रेन की श्रेणी में रखा गया है. टेम्पोरल आर्टीराइटिस, क्लस्टर हेडेक्स, ग्लॉकोमा और मेनिन्जाटिस को भी कभी कभी माइग्रेन समझने की भूल की जाती है.

माइग्रेन की पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए जिन उपायों का सुझाव दिया जाता है उसमें प्रमुख हैं औषधियाँ, संपोषक आहार, जीवन शैली में परिवर्तन और अंततः शल्य क्रिया. जिन लोगों पर सप्ताह में एक दो बार इसके दौरे पड़ते हैं या जिनमें दौरों की गंभीरता इतनी होती है कि उसे नियन्त्रित करना कठिन होता है, उन लोगों को निरोधात्मक चिकित्सा का ही परामर्श दिया जाता है. कुछ लोगों में औषधियों के अति उपयोग से भी पीड़ा बढ़ती है. टॉपीरेमेट सोडियम वैलप्रोएट प्रोप्रैनोलॉल तथा मेटोप्रोलॉल जैसे लवण निरोधात्मक औषधि के रूप में उपयोगी बताए गए हैं. टिमॉलॉल को निरोधात्मक और चिकित्सकीय दोनों ही रूपों में उपयोगी पाया गया है. मैग्नेशियम को संपूरक के रूप में लेना भी लाभकर कहा गया है. जड़ी बूटी आधारित उपचार में पेटासाइट्स हाइब्रिड्स को भी माइग्रेन रोकने में प्रभावकारी पाया गया है. अन्य वैकल्पिक उपचारों के रूप में एक्यूपंक्चर, फ़िजियोथिरैपी, मालिश और विश्राम आदि के भी सुझाव दिए जाते हैं. इन सभी में प्राकृतिक औषधि के रूप में 'बटरबर' (स्थानीय नाम) अथवा पूर्वोलिखित 'पेटासाइट्स हाइब्रिडस' को सबसे प्रभावशाली देखा गया है.

चिकित्सा के आवश्यक चरणों के रूप में उत्तेजक कारकों से बचाव, लाक्षणिक उपचार और नियन्त्रण तथा भेषजीय (फार्माकालॉजिकल) निरोधात्मक चिकित्सा की भूमिका को प्रश्रय दिया जा रहा है. इन सबके अतिरिक्त पीड़ाहारक औषधियाँ ही सबसे उपयोगी सिद्ध हुई है. इनमें स्टेरॉयड रहित शोथनाशक,पैरासीटेमॉल,कैफ़ीन और एस्पिरीन युक्त दवाओं, डाइक़्लोफ़िनैक और आइबूप्रोफेन युक्त दवाओं की विशेष भूमिका है. आधुनिक समय में माइग्रेन के उपचार में तंत्रिका उद्दीपक अथवा न्यूरोस्टिमुलेटर्स की भी सहायता ली जाने लगी है. इस तंत्रिका उद्दीपन की प्रक्रिया में अनाक्रामक और रोपणीय तंत्रिका उद्दीपकों की सहायता ली जाती है जैसा कि हृदय रोगों के लिए पेसमेकर द्वारा किया जाता है. यह विधि अधिकांशतः लंबे समय से ग्रस्त माइग्रेन रोगियों के लिए अपनाई जाती है. इसमें ट्रांसक्यूटेनियस या परात्वकीय वैद्युत तंत्रिका उद्दीपकों तथा ट्रान्सक्रेनियल अथवा पराकपालीय चुम्बकीय उद्दीपकों का उपयोग किया जाता है. कुछ लोगों में अंतिम उपचार के रूप में शल्य क्रिया में गर्दन और सिर की कुछ तंत्रिकाओं के विसपीड़न से भी माइग्रेन का उपचार किया जाता है. विशेषतया यू एस में इस प्रकार की विधियों को मान्यता प्राप्त है. माइग्रेन के उपचार में एक बड़ी कठिनाई यह है कि अक्सर यह दवाओं के प्रति शीघ्रता से अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं प्रदर्शित करता और अधिक औषधियां लेने की स्थिति में औषधि की अति से उत्पन्न और अधिक तीव्रतर पीड़ा वाले माइग्रेन का आरम्भ हो जाता है. कुछ दवाओं के प्रभाव से शरीर में एकाएक गर्मी का अनुभव करना जैसे पार्श्व प्रभाव होते हैं. कुछ दुर्लभ अवसरों पर पार्श्वप्रभाव के रूप में मायोकार्डियल इश्चीमिया (हृदयाघात की एक स्थिति) का होना भी देखा गया है. अतः हृदय रोगियों में माइग्रेन के उपचार में औषधियों के चयन में विशेष सावधानी की आवश्यकता पड़ती है. बच्चों के माइग्रेन उपचार में पैरासीटेमॉल के स्थान पर आइबूप्रोफेन को अधिक प्रभावी देखा गया है.

नवीन शोध प्रयासों के फलस्वरूप अब शरीर में किसी विशेष विटामिन की कमी को भी माइग्रेन के प्रकोप का उत्तरदायी माना जाने लगा है. वस्तुतः हाल में किए गए एक शोध अध्ययन के फलस्वरूप शोधकर्ता कुछ ऐसे परिणामों तक पहुँचे हैं जहाँ वे अब इस बात को निश्चित रूप से कह सकते हैं कुछ विटामिनों को संपूरक तत्वों के रूप में देने से अनेक माइग्रेन पीड़ितों को लाभ पहुँचाया जा सकता है. इस नये शोध के अनुसार बच्चों, किशोरों और युवाओं में अक्सर विटामिन 'डी', राइबोफ्लेविन और उसके साथ के एन्ज़ाइमों का स्तर आवश्यकता से कम पाया गया है. मानव शरीर की कायिकी में उक्त तीनों ही विटामिनों की अति महत्वपूर्ण भूमिका है. हमारे शरीर की कोशिकाओं में स्थित माइटोकॉन्ड्रिया को कार्य करने के लिए इन तीनों ही विटामिनों की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि माइटोकान्ड्रिया ही वह स्थान है जो ऊर्जा का उत्पादन करता है. इस कार्यसंचालन में बाधा के कारण हमारा शरीर ऊर्जा की कमी से ग्रस्त हो जाता है भले ही वह स्थिति विटामिन की न्यूनता के कारण

उत्पन्न हो रही हो या विटामिनों के अत्यधिक उपयोग के कारण. इस संबंध में शोधरत दल ने 7600 ऐसे युवाओं पर किए गए परीक्षणों के आँकड़ों की विवेचना की, जो माइग्रेन से पीड़ित थे. उनके रक्त में प्राप्त विटामिनों यथा- विटामिन डी, राइबोफ्लेबिन, को-एन्ज़ाइम क्यू-10 और फ़ोलेट का परीक्षण किया गया. इनमें 15 प्रतिशत लोगों का राइबोफ़्लेविन स्तर आवश्यकता से काफ़ी कम पाया गया. इसी के साथ एक बड़ा प्रतिशत ऐसा भी था जिनमें कोएन्ज़ाइम क्यू-10 का स्तर भी बहुत न्यून था. सबसे मुख्य बात तो यह सामने आई कि पीड़ित लोगों में लगभग 70 प्रतिशत के रक्त में विटामिन 'डी' की मात्रा विशेष रूप से कम पाई गई.

शोध के इन परिणामों से वैज्ञानिकों की इस मान्यता को पुष्टि मिली कि माइग्रेन के मूल में कोएन्ज़ाइम क्यू-10 की न्यूनता का बड़ा हाथ है. इस संबंध में एक और चैकाने वाला तथ्य सामने आया कि कोएन्ज़ाइम क्यू-10 की कमी से लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक ग्रस्त होती हैं. साथ ही विटामिन 'डी' की कमी लड़कों और युवाओं को अधिक ग्रस्त करती है.

एक विचारणीय तथ्य यह भी है कि माइग्रेन से पीड़ित हर व्यक्ति के दर्द के दौरे की शुरुआत भिन्न भिन्न कारणों से होती है. यह भी एक बड़ा कारण है कि चिकित्सक और वैज्ञानिक माइग्रेन का सही कारण ढूँढ़ पाने में अब तक असमर्थ रहे हैं. इसके प्रेरक कारणों में प्रत्येक व्यक्ति का अलग परिवेश, तनावों को झेल सकने की उसकी व्यक्तिगत क्षमता, उसके शरीर की अन्य व्याधियां और उसका सामान्य स्वास्थ्य, उसकी जीवन और विशेषकर भोजनशैली आदि अनेक पक्ष विद्यमान होते हैं. संभवतः यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति में माइग्रेन के उत्प्रेरक अलग अलग होते हैं. अभी माइग्रेन के उत्प्रेरक कारकों और विटामिन की कमी के मध्य आपसी संबंध पर और शोध की आवश्यकता है.

यह तो सुनिश्चित है कि वैज्ञानिक वर्षों से विटामिन और अन्य संपूरक तत्वों की कमी का संबंध माइग्रेन या पुराने सरदर्द से जोड़ते रहे हैं परंतु इस संबंध को अभी शोधों के परिणाम से पूरी तरह पुष्ट नहीं किया जा सका है. तथापि जितना भी शोध अभी तक हो सका है उसके आधार पर यह पता लगा है कि माइग्रेन से पीड़ित व्यक्तियों में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा विटामिन डी की न्यूनता 13 प्रतिशत से 15 प्रतिशत तक पाई गयी है. यह एक अलग पक्ष है कि विशुद्ध चिकित्सीय आधार पर इन दोनों के मध्य संबंध अभी प्रमाणित नहीं है फिर भी दवा कंपनियां अभी से ही माइग्रेन के इलाज के रूप में 'विटामिनों का मिश्रण' बाजार में उतारने लगी हैं. इन मिश्रणों में मैगनीशियम, टाइलेनॉल, कैफ़ीन और कुछ अन्य विटामिनों का समावेश किया जाता है. दावा यह है कि ये औषधियाँ माइग्रेन की तीव्रता कम करने के साथ उनके दौरों के मध्य का अन्तराल भी बढ़ाने में सहायक हैं. चिकित्सक यद्यपि अभी इस बात पर पूर्ण सहमति नहीं जता रहे हैं पर विषय के विशेषज्ञों का पक्ष यह कहता है कि ये लिए जाने वाले विटामिन यदि प्रस्तावित मात्रा में लिए जा रहे हैं तो उनके लेने से शरीर को कोई क्षति तो नहीं होती है अतः उनको लेने में कोई हानि भी नहीं है.

प्रयोगशाला में हो रहे अध्ययनों के आधार पर मैगनीशियम और माइग्रेन के मध्य अवश्य एक निश्चित संबंध देखा गया है. यदि इसे माइग्रेनग्रस्त व्यक्तियों द्वारा नियमित रूप से प्रतिदिन एक निरोधक औषधि के रूप में लिया जाए तो माइग्रेन के दौरों में एक सीमा तक कमी लाई जा सकती है. यदि इनके इस पारस्परिक संबंध की दिशा में और गहन शोधकार्य किए जाएँ तो निश्चित ही माइग्रेन पीड़ितों को सरदर्द की भीषण यातना से मुक्ति मिल सकेगी. इसका एक सकारात्मक पक्ष यह है कि विटामिनों के रूप में ली जाने वाली इस औषधि का अन्य औषधियों की तरह कोई हानिकारक पार्श्वप्रभाव नहीं होगा.

वैश्विक स्तर पर माइग्रेन के प्रकोप के विश्लेषण में यह सामने आया है कि एशिया और अफ्रीका की तुलना में पाश्चात्य देशों में इसका प्रकोप कुछ अधिक है. माइग्रेन संबंधी प्राचीनकालिक अध्ययन से यह भी पता लगा कि 7000 ईसा पूर्व इसके उपचार के लिए कपालास्थि में छिद्र किए जाते थे और मान्यता यह थी कि ''उस छिद्र की राह से मस्तिष्क में उपद्रव करने वाली दुष्ट आत्मएं बाहर निकल जाएंगी.'' कई हजार वर्षों बाद 1868 में एरगॉट नामक कवक के उपयोग से माइग्रेन के उपचार में पहली बार एक बड़ी सफलता प्राप्त की गई. 1918 में इसे 'एरगॉटेमाइन' के रूप में विलगित कर लिया गया. माइग्रेन के उपचार में केवल यूरोप में प्रतिवर्ष 27 बिलियन पाउंड्स व्यय किए जाते हैं. इस प्रकार इसका उपचार आर्थिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर अत्यधिक मँहगा है. इसके प्रबंधन के लिए सबसे प्रभावी उपाय आज भी यही है कि इसके दौरे की शुरूआत को बचाने को प्रयत्न किए जाएँ, लक्षणों के प्रारंभ होने पर उसे नियंत्रित करने का प्रयास हो और एक बार प्रारंभ होने पर उचित औषधियों से उपचार किया जाए.

डामर के स्रोत और उपयोग

- शिक्षा स्वरूपा कर, केवल कृष्ण गोला,
वैज्ञानिक, तकनीकी अधिकारी,
सी.एस.आई.आर-सी.आर.आर.आई., नई दिल्ली 110025

भूमिका

पेवमेंट (कुट्टीम) को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जाता है जैसे सुनम्य कुट्टीम और रिजिड दृढ़ कुट्टीम. सुनम्य कुट्टीम में फ्लेक्षरल सामर्थ्य नगण्य या बहुत कम पाया जाता है. इस प्रकार के कुट्टीम में शीर्ष परत पर निचली परतों का विरूपण दर्शाता है. सुनम्य कुट्टीम की परतों की संरचना ग्रैनुलर होती हैं. ग्रैंस के मध्य तनाव संपर्क बिंदुओं के माध्यम से लंबवत या संपीड़ित तनाव संचारित करती हैं. कुट्टीम सतह पर ऊर्ध्वाधर संपीड़न तनाव सीधे व्हील लोड के नीचे अधिकतम होता है और पहियों के नीचे का संपर्क दबाव के बराबर होता है. डामर कुट्टीम के वियरिंग और बाईंडर कोर्स लिए सबसे महत्वपूर्ण घटक है. सुनम्य कुट्टीम संरचना का एक क्रॉस सेक्शन नीचे दिया गया है.

सड़क की उपरी परत (वियरिंग कोर्स)
बाइंडर कोर्स
बेस कोर्स
सब-बेस कोर्स
मृदा (सॉइल) सब-ग्रेड

आकृति-1 कुट्टीम का विशिष्ट क्रॉस सेक्शन

डामर 'टार' - आसवन विधि द्वारा प्राप्त हाइड्रोकार्बन का जटिल मिश्रण जो कि प्राकृतिक रूप से मिलने वाले पेट्रोलियम पदार्थ से मिलता हैं, इसको सड़क बनाने और छत की मरम्मत या अनुरक्षण के लिए उपयोग किया जाता है.

यह माना जाता है 'बिटुमन' शब्द का उद्भव प्राचीन काल के संस्कृत शब्द 'जतु' से हुआ है जिसका अर्थ है पिच (कोलतार) और 'जतु-क्रित' का मतलब कोलतार बनाना है. यह शब्द कुछ राल पेड़ों द्वारा उत्पादित पिच के संदर्भ में किया जाता है. लैटिन शब्द के समकक्ष 'ग्विटू-मन' (कोलतार से संबंधित) और 'पिक्स्टू मन' (बबलिंग कोलतार) होने का दावा किया जाता है, जिसे बाद में 'बिटुमन' तक छोटा कर दिया गया.

डामर के स्त्रोत

छत व पेविंग हेतू डामर के प्रसिद्ध स्रोत निम्नलिखित हैं

झील डामर : (प्राकृतिक डामर) यह डामर व्यापक रूप से सबसे अधिक उपयोग किया जाता है और सबसे अच्छी तरह से प्रचलित है. सतह पर जमा डामर के रूप में इसको परिभाषित कर सकते हैं. जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण त्रिनिदाद में स्थित है. आमतौर पर यह माना जाता है कि झील डामर की जमा राशि की खोज सन् 1595 में सर वाल्टर राघेल द्वारा की गई थी. त्रिनिदाद द्वीप पर प्राकृतिक डामर जमा हैं. त्रिनिदाद के दक्षिणी हिस्से में एक बड़ी झील है, जो दुनिया में झील डामर की सबसे बड़ी जमा राशियों में से एक है. इस झील का क्षेत्रफल लगभग 35 हेक्टेयर है और लगभग 90 मीटर गहराई होने का अनुमान है. जिसमें लगभग 10 मिलियन टन सामग्री हो सकती है. झील डामर की खुदाई कर प्राप्त सामग्री को 160 डिग्री सेल्सियस तक गर्म करके पानी को वाष्पीकृत करके परिष्कृत किया जाता है. पिघले हुए पदार्थ में से कोर्स, अवांछनीय खनिज मिनरल आदि को छलनी के माध्यम से पारित किया जाता है. उसके बाद बचे अंतिम अवशेष को 'त्रिनिदाद एप्योर' या 'परिष्कृत टी.एल.ए.' कहा जाता है. आमतौर पर बचा अवशेष (वजन के प्रतिशत में) होता हैं जैसे बाइंडर 54 प्रतिशत, खनिज (मिनरल) पदार्थ 36 प्रतिशत और जैविक पदार्थ 10 प्रतिशत. इसमें लगभग पेनिट्रेशन 2 डी मि.मी.और लगभग 95 डिग्री सेल्सियस का सोफ्टनिंग पॉइंट (नरम बिंदु) पाया जाता है. टी.एल.ए. को अब कभी-कभी स्टोन मास्टिक अस्फाल्ट (पत्थर मैस्टिक डामर) और अस्फाल्ट (डामर) कंक्रीट मिश्रण में उपयोग किया जाता है. इसको 20 प्रतिशत से 30 प्रतिशत पेविंग ग्रेड डामर की जगह प्रयोग किया जा सकता है. यह छत और पेविंग अनुप्रयोगों में मैस्टिक डामर की जगह पर 70

प्रतिशत तक प्रयोग किया जाता है.

रॉक डामर : रॉक डामर, सत्तरवीं शताब्दी की शुरुआत से यूरोप में उपयोग डामर संसक्ति (इंप्रिग्नटिड़) चट्टान में पाया जाने वाला डामर है, जिसका मुख्य उपयोग छत की वाटरप्रुफिंग, जहाजों में कलकिंग और लकड़ी में अपक्षय (रोट) और परजीवी (वर्मिन) के खिलाफ सुरक्षा हेतू किया जाता था. जमा डामर के प्रकार के आधार पर रॉक डामर स्रोत या खदानों से निकाला जाता है. रॉक डामर तब होता है जब डामर, उसी संकेंद्रण प्रक्रियाओं द्वारा गठित होता है जो परिष्कृत रॉक डामर संरचनाओं में फंस जाता है. यूरोप में रॉक पेट्रोलियम डामर का सबसे बड़ा भंडार स्विट्जरलैंड, फ्रांस और इटली में हैं.

उत्तरी अमेरिका में चूना पत्थर या बलुआ पत्थर में 12 प्रतिशत संकेंद्रित प्राकृतिक डामर जमा के साथ बने होते हैं. यूटा और केंटकी में बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में विशाल बिटुमिनस बलुआ पत्थर का खनन किया गया था. यूटा में सननिसाइड बलुआ पत्थर एक उदाहरण है जिसमें 8 मिलियन टन डामर संकेंद्रण शामिल होने का अनुमान है. इसमें डामर की मात्रा 8-13 प्रतिशत तक सकेंद्रित है. यह पृथ्वी के चारों ओर तीन बार 22 मीटर चौड़ी सड़क बनाने के लिए यह पर्याप्त होगा. अमेरिका और यूरोप के जमा रॉक डामर को निकालकर इस्तेमाल होने वाले क्षेत्रों में ले जाया जाता था. यद्यपि रॉक डामर का उपयोग अब नहीं हो रहा है. परंतु यह ध्यान रखना चाहिए कि रॉक डामर का इस्तेमाल पहली बार सड़कों को बनाने व सड़कों में जलरोधक डामर सामग्री के रूप में किया गया था. स्विट्जरलैंड से लाकर 1854 में पेरिस में और 1872 में न्यूयॉर्क शहर के यूनियन स्क्वायर में रॉक डामर का उपयोग किया गया था. वर्तमान में, फ्रांस में केवल एक एस्फाल्टिक चूना पत्थर का उत्सर्जन किया जा रहा है जहां रॉक डामर की 7-10 प्रतिशत डामर का संकेंद्रण है.

जिल्सोनाइट : संयुक्त राज्य अमेरिका के मध्य-पश्चिम में यूटा राज्य में प्राकृतिक डामर का एक बड़ा भंडार है. 1860 में इस भंडार को खोजा गया था. पहली बार 1880 में सैमुअल एच जिल्सन द्वारा लकड़ी के जलरोधक एजेंट के रूप में इसका इस्तेमाल किया गया था. यह सामग्री बहुत कठोर थी जिसमें पेनिट्रैशन शून्य व नरम बिंदु (सोफ्टनिंग पॉइंट) 115 और 190 डिग्री सेल्सियस के बीच का होता है. खनन प्रक्रिया में श्रम शक्ति का अधिक उपयोग इसे महंगा बनाता है. हालांकि, यह नरम बिंदु और मैस्टिक डामर की कठोरता को बदलने से इसे पुल और छत जलरोधक सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है.

टार : 'टार' तरल के लिए एक सामान्य (जेनरिक) शब्द है. टार शब्द को उस सामग्री के नाम से जाना जाता है, जिससे इसे प्राप्त किया जाता है. इस प्रकार, इस प्रारंभिक कार्बोनाइजेशन प्रक्रिया के उत्पादों में इसे कच्चा कोयला टार, कच्चा लकड़ी टार इत्यादि के रूप में जाना जाता है. दो प्रकार के कच्चा कोयला टार को उत्पादित किया जाता है जिसमें उप-उत्पाद के रूप में कोयला-कोक ओवन टार और कम तापमान वाला टार होता हैं. 1970 के दशक से ब्रिटेन में कच्चे कोयले की आपूर्ति में नाटकीय परिवर्तन हुए थे. 1960 के दशक के मध्य में, प्रति वर्ष 2 मिलियन टन कच्चे कोयले का उत्पादन किया जाता था. जिसमें लगभग आधा कार्बोनाइजेशन ओवन के संचालन के उप-उत्पाद के रूप में निर्मित किया गया था. जिसका उपयोग शहर हेतु गैस का उत्पादन करने के लिए किया जाता था. हालांकि 1960 के दशक के अंत में नॉर्थ सी गैस की शुरुआत के परिणामस्वरूप टार के उत्पादन में तेजी से कमी आई और 1975 तक यह पूरी तरह से गायब हो गया था.

परिष्कृत डामर : डामर कच्चे तेल से निर्मित होता है. आम तौर पर यह माना जाता है कि कच्चा तेल समुद्री जीवों और समुद्र के तलछट में चट्टान के टुकड़ों के साथ जमा समुद्री जीवों और वनस्पति पदार्थों के अवशेषों से निकलते हैं. लाखों वर्षों में जैविक सामग्री और मिट्टी सैकड़ों मीटर मोटी परतों में जमा होती है. ऊपरी परतों का भार तलछट में चट्टान और निचली परतों को संपीड़ित (कंप्रेस) करता है. जीवों और वनस्पति पदार्थों को कच्चे तेल के हाइड्रोकार्बन में परिवर्तित करने के लिए तलछट पर ऊपरी परतों द्वारा दबाव और पृथ्वी के क्रस्ट की गर्मी का परिणाम माना जाता है. संभवतः बैक्टीरियल क्रिया और रेडियोधर्मी बमबारी के प्रभाव से इसमें सहायता प्राप्त होती है. सागर के तलछट की चट्टानों में जमा तेल अतिरिक्त दबाव के कारण और छिद्रिल (पोरस) चट्टानों के माध्यम से निचुड़ता है. सौभाग्य से, तेल और गैस का अधिकांश भाग छिद्रित चट्टान में फंस जाता है. छिद्रित चट्टान पृथ्वी की सतह तक फैली हुई है, तेल सतह से घूमता रहता है. इस प्रकार से गैस और तेल का निर्माण होता है इसकी उपस्थिति का पता भूकंपीय सर्वेक्षणों से कारण प्राप्त होता है. संयुक्त राज्य, मध्य पूर्व, रूस और कैरीबियाई व आसपास के क्षेत्र दुनिया के चार मुख्य तेल उत्पादक देश हैं. कच्चे तेल उनके भौतिक और रासायनिक गुणों में भिन्न होते हैं. भौतिक रूप से काला चिपचिपा तरल पदार्थ स्ट्रॉ रंगीन तरल एक जैसा पर रासायनिक रूप से भिन्न होता हैं. ये मुख्य रूप से पैराफिनिक, नैफिथिक या सुगंधित हो सकते हैं, जिनमें पहले दो गुण सबसे आम हैं.

दुनिया भर में लगभग 1500 के करीब क्रूड उत्पन्न होते हैं. उत्पाद की उत्पन्नता और गुणवत्ता के आधार पर, इनमें से कुछ को ही डामर के निर्माण के लिए उपयुक्त माना जाता है.

डामर का वितरण और भंडारण

सड़क निर्माण में उपयोग के लिए डामर को कभी-कभी 180 डिग्री सेल्सियस तक के ऊंचे तापमान पर गर्म किया जाता है. स्थानीय कारणों के असार कभी-कभी डामर को बार-बार गर्म करना पड़ सकता है. अपने गुणों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए बिना डामर को काफी समय तक ऊंचे तापमान पर फिर से गर्म या संग्रहीत किया जा सकता है. हालांकि, अधिक ताप और गलत रखरखाव या गलत इस्तेमाल के कारण इसके प्रदर्शन व सुरक्षा में प्रतिकूल प्रभाव की स्थिति बन सकती है. भंडारण, हीटिंग और रखरखाव को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्ननुसार हैं.

अ) हवा की उपस्थिति

ब) तापमान

स) सतह अनुपात (टैंक की सतह)

डामर की वितरण : डामर से संबंधित दुर्घटनाएं उत्पाद वितरण और भंडारण के दौरान होती हैं. उचित सुरक्षात्मक उपकरणों और सुरक्षा उपायों की व्यक्तिगत आवश्यकता होती है और गर्म डामर को त्वचा के संपर्क से बचाना चाहिए वरना ये त्वचा को जला सकता है. यह भी जरूरी है कि गर्म डामर के संपर्क में पानी न आए. यदि ऐसा होता है, तो पानी भाप में परिवर्तित हो जाता है. डामर में उच्च तापमान पर आग पकड़ सकता है. डामर का ऑटो इग्निशन तापमान आम तौर पर लगभग 350-400 डिग्री सेल्सियस होता है. कभी-कभी डामर टैंक में आग लग जाती है. यदि ऑक्सीजन की मात्रा कम है, तो डामर से H_2S भंडारण टैंक की छत/दीवारों पर जमे जंग (लौह ऑक्साइड) के साथ प्रतिक्रिया कर सकता है जिससे पाइपोफोरिक लौह ऑक्साइड बन जाता है. जब टैंक में ऑक्सीजन सामग्री धीरे-धीरे बढ़ जाती है तो यह ऑक्सीजन के साथ प्रतिक्रिया करती है और तब इसमें स्वयं आग लग सकती है.

जमा कोक ऑक्सीजन व उच्च तापमान की उपस्थिति में आग पकड़ सकता है. आग या विस्फोट की वजह से एक एक्सोथर्मिक प्रतिक्रिया होने की संभावना होती है. यह अच्छी तरह से माना जाता है कि डामर हाइड्रोकार्बन का जटिल मिश्रण है. डामर में धुआँ आमतौर पर 150 डिग्री सेल्सियस से शुरू होता हैं. प्रत्येक 10 डिग्री सेल्सियस के बढ़ने से धुएं की मात्रा दोगुनी हो जाती है. धुएं में H_2S और हाइड्रोकार्बन होते हैं. 500 पी.पी.एम. जितनी कम सांद्रता होने पर भी इसका H_2S एक्सपोजर घातक होने की संभावना होती है. इसमें पॉलीसाइक्लिक सुगंधित हाइड्रोकार्बन के निशान भी मौजूद होते हैं, जो कैंसरजन्य होते हैं.

भंडारण : डामर को विशेष रूप से उपयोग के लिए इच्छित डिजाइन किए गए टैंकों में संग्रहित किया जाना चाहिए. डामर के गर्म होने की स्थिति में भंडारन के दौरान दुर्घटनाएं होने की संभावना होती है. यदि इसका भंडारण मानक डिजाइन टैंक के साथ नहीं किया जाता हैं तो ये दुर्घटनाओं का कारण हो सकता है. इसलिए, भंडारण के दौरान डामर के टैंक को डिजाइन करते समय हमें निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए.

क) टैंक में सटीक तापमान सेंसर और गेज के साथ लगाया जाना चाहिए. इन्हें सफाई के लिए हटाने का भी प्रबंध होना चाहिए और इन्हें हीटिंग क्षेत्र के करीब रखा जाना चाहिए.

ख) टैंक का सतह क्षेत्र मात्रा अनुपात के अनुसार इतना सार्थक होना चाहिए जो कि डामर के शीघ्र वाष्पीकरण को रोक सके और इसका आयाम इस प्रकार का हो जिसमें उसका सतही क्षेत्र, आयतन के अनुसार कम हो और लम्बवत स्टोरेज टैंक ज्यादा ऊंचाई वाले होने चाहिए रेडियस रैशियों के मुताबिक.

ग) पुनरावृत्ति प्रणाली में पुनरावृत्ति लाइनों को डामर सतह के नीचे के भंडारण टैंक से जोड़ना चाहिए.

घ) अत्यधिक हीटिंग को कम करने के लिए टैंक में डामर का भंडारन समय कम होना चाहिए.

ड़) यदि सामग्रियों को लंबे समय तक संग्रहित किया जाता है, तो पुनरावृत्ति का उपयोग केवल अंतःक्रियात्मक रूप से किया जाना चाहिए.

च) डामर भंडारण टैंक को स्वचालित स्तर के संकेतकों के साथ लगाया जाना चाहिए ताकि हीटर ट्यूबों को दहनशील वातावरण में उजागर किया जा सके.

पेविंग डामर

भारत में, पेविंग डामर आईएस : 73-2012 मानक के अनुरूप है, जो सड़क के उद्देश्य को पूरा करने वाले सभी ग्रेड डामर को सम्मिलित करता है. फील्ड इंजीनियरों की सुविधा के लिए डामर हेतू वर्तमान तकनीकी विनिर्देश मुख्य रूप से एक चिपचिपाहट आधारित ग्रेडिंग सिस्टम है IS73-2012 चिपचिपाहट का श्रेणीकरण व प्रवेश मूल्यों की एक सीमा निर्दिष्ट करता है. तालिका 1 विनिर्देशों का विवरण दिखाता है.

तालिका 1 : डामर वर्गीकरण पेविंग हेतू

क्रम संख्या	विवरण	पेविंग ग्रेड्स				'टेस्ट रेफ.
		वी.जी.10	वी.जी.20	वी.जी.30	वी.जी.40	
1	ऐबसोल्यूट विस्कोसिटी 60 डिग्री सेल्सियस पोइस, मिनट पर	800	1600	2400	3200	आई.एस.1206 (भाग 2)
2	क़ाईनेमेटिक विस्कोसिटी 135 सेल्सियस, सी.एस.टी., मिनट में	250	300	350	400	आई.एस.1206 (भाग 3)
3	फ्लेश बिंदु, सी.मिनट	220	220	220	220	आई.एस.1209
4	घुलनशीलता ट्राईक्लोरोइथीलीन, में प्रतिशत, प्रतिशत, मिनट	99	99	99	99	आई.एस.1206
5	डिग्री सेल्सियस पर प्रवेश (पेनिट्रैशन) 100 ग्राम,5 एस, 0.1 मि.मी.	80-100	60-80	50-70	40-50	आई.एस.1203
6	नरम बिंदु, डिग्री सेल्सियस, मिनट	40	45	47	50	आई.एस.1205
	पतली फिल्म ओवन परीक्षण / आर.टी.एफ.ओ.टी.से अवशेष पर परीक्षण					
अ	60 डिग्री सेल्सियस पर विस्कोसिटी अनुपात, अधिकतम	4	4	4	4	आई.एस.1206 (भाग 2)
ब	पतली फिल्म ओवन टेस्ट/ आर.टी.एफ.ओ.के बाद 25 डिग्री सेल्सियस, सेमी, मिनट पर सुनम्यपन (डकटिलिटी)	75	50	40	25	आई.एस.1208

कुट्टीम निर्माण में उपलब्ध प्रौद्योगिकी

1) कोल्ड मिक्स (शीत मिक्स प्रौद्योगिकी)

इमल्शन (पायस) एक कोलाइडियल प्रणाली है. जो हमारे दैनिक जीवन में एक महत्वपूर्ण जगह रखता है. अधिकांश लोग इमल्शन से परिचित हैं. दूध, मेयोनेज, पेंट्स, लोशन, क्रीम, रबर लेटेक्स कुछ इसके प्रसिद्ध उदाहरण हैं. पायस दो चरण प्रणाली है जिसमें एक घटक दूसरे पर फैलता है. प्रत्येक मामले में, यांत्रिक प्रोद्योगिकी के साथ कुछ रसायनों की भी अतिरिक्त की आवश्यकता होती है. ठंडा मिश्रण तकनीक का उपयोग करके कुट्टीम के निर्माण के लिए डामर इमल्शन (पायस) उपयोग की जाने वाला प्रमुख घटक है.

डामर इमल्शन एक दो चरण प्रणाली है, इमल्शन के गुणों को संशोधित करने के लिए जिसमें डामर, पानी और गठन या स्थिरीकरण (स्टेबलाइजेशन) में सहायता के लिए एक या अधिक योजक (अड़िटिव) शामिल होते हैं. पूरे पानी पर डामर अलग-अलग असत (डिसक्रियट) ग्लोब्यूल के रूप में फैलता है, आमतौर पर इसका व्यास 0.1 से 50 माइक्रो मीटर में होता है. जो पायसीकारक द्वारा लटके इलेक्ट्रोस्टैटिक चार्ज द्वारा प्राप्त होता है. कच्चे माल की संरचना को देखते हुए जो डामर पायस में जाते हैं, उनमें डामर, पानी, पायसीकारकों (इमल्सीफायर), अम्ल (एसिड) या कास्टिक, पॉलिमर, लवण, सॉल्वैंट्स, डामर पानी, पायसीकारकों (इमल्सीफायर), अम्ल (एसिड) या कास्टिक, पॉलिमर, लण, सॉल्वैंट्स, डामर एडिटिव्स और इमल्शन स्टेबिलाइजर शामिल हो सकते हैं.

पायस की गुणवत्ता और प्रदर्शन को प्रभावित करने वाले चर

ऐसे कई कारक हैं जो डामर पायस के उत्पादन, भंडारण, उपयोग और प्रदर्शन को प्रभावित करते हैं. गुणवत्ता और पायस के प्रदर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव वाले चर निम्नलिखित है :-

- आधारभूत डामर के रासायनिक गुण
- आधारभूत डामर की संगति (कंसिसटेंसी) और मात्रा
- पायस में डामर के कण आकार
- पायसीकारकों (इमल्सीफायर) की गुणवत्ता और सान्द्रता (कंसंट्रेशन)
- विनिर्माण स्थितियां जैसे तापमान, दबाव, और अपप्रपण (शियर) दर

- पायसनी कणों पर आयनिक चार्ज
- अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता
- पायस निर्माण में इस्तेमाल उपकरण
- रासायनिक संशोधक (संशोधक) या बहुलक (पोलीमर) के गुण
- पानी की गुणवत्ता विशेष रूप से पानी की कठोरता

उपलब्ध सामग्री या निर्माण विनिर्देशों के अनुरूप इन कारकों को बदला जा सकता है.

कमरे के तापमान पर इसकी चिपचिपाहट कम होने के कारण, कमरे के तापमान पर पेविंग मिश्रण का उत्पादन होता है परिवेश के तापमान पर पायस मिश्रण और रोड़ी (अग्रिगेट को मिलाया जाता है) इस तकनीक को ठंडा मिश्रण प्रौद्योगिकी के रूप में जाना जाता है और इसे हरी तकनीक कहा जाता है.

2) डामर मिश्रण (बिटुमिनस मिक्स) में प्लास्टिक अपशिष्ट (प्लास्टिक कचरा)

जनसंख्या, विकास गतिविधियों, जीवन शैली में बदलाव और सामाजिक - आर्थिक परिस्थितियों में वृद्धि के कारण ठोस अपशिष्ट की मात्रा बढ़ रही है. प्लास्टिक कचरा कुल नगरपालिका ठोस अपशिष्ट (एम.एस.डब्ल्यू) में एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और प्रति दिन 10 हजार टन (टी.पी.डी.) होने का अनुमान है, जो भारत में कुल एम.एस.डब्ल्यू का 9 प्रतिशत है. प्लास्टिक कचरे में थर्मोप्लास्टिक्स और थर्मोसेट जैसे प्लास्टिक के दो प्रमुख घटक होते हैं. भारत में उत्पन्न कुल उपभोक्ता प्लास्टिक अपशिष्ट में थर्मोप्लास्टिक्स कचरे का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा है और थर्मोसेट से उत्पन्न 20 प्रतिशत के लगभग होता है. इसका प्रमुख स्रोत किराने और दूध के बैग से प्राप्त उपभोक्ता प्लास्टिक अपशिष्ट हैं.

दुनिया में 1950 के दशक में प्लास्टिक की वार्षिक खपत लगभग 5 मिलियन टन से बढ़कर हाल ही में लगभग 100 मिलियन टन हो गई है. प्लास्टिक व्यापक रूप से जीवनशैली में अनिवार्य होते हैं और जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में एक प्रमुख योगदान करते हैं. दुनिया में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश होने के नाते, भारत लगातार अपनी भौगोलिक सीमाओं के भीतर प्लास्टिक अपशिष्ट सामग्री जोड़ता जा रहा है. भारत में 2000-01 के दौरान वर्जिन प्लास्टिक की खपत 3.5 मिलियन टन थी, इसके अलावा 1 मिलियन टन पुनर्नवीनीकरण प्लास्टिक भी था. भारत में दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा प्लास्टिक उपभोक्ता बन रहा है.

यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि मौजूदा भारी यातायात और अत्यधिक पर्यावरणीय परिस्थितियों में, पारंपारिक डामर कुट्टीम, कई स्थितियों में स्थायित्व आवश्यकता को पूरा नहीं कर रहा हैं. इसलिए, पिछले दशक के दौरान, भारत में कुछ स्थितियां ऐसी होती है कि जिनके लिए उन्नत डामर सामग्री की आवश्यकता होती है. 1999 से सड़कों का स्थायित्व बढ़ाने के लिए सुनम्य कुट्टीम के लिये संशोधित बाइंडरों का उपयोग हो रहा हैं. संशोधित बाइंडर्स को प्रीमियम बाइंडर्स के रूप में जाना जाता है, जो की अभियंता को मजबूत और टिकाऊ कुट्टीम बनाने और डिजाइन करने को प्रेरित करते हैं. दुनिया भर में इन बाइंडरों ने बेहतर प्रदर्शन किया है, और जब इनके जीवन चक्र व लागत पर विचार किया जाता है तो वे कम खर्चीले होते हैं. संशोधित बाइंडरों का उपयोग करके हम रखरखाव लागत में 20-30 बचत हासिल की जा सकती है.

सड़क निर्माण में संशोधित मिश्रण के गुण

परंपरागत डामर मिश्रणों के मुकाबले संशोधित डामर मिश्रणों में निम्नलिखित गुण होते हैं.

(1) कठोर (स्टीफन) बाइंडर्स और उच्च तापमान का मिश्रण कुट्टीम पर रटिंग को कम करता है.

(2) कम तापमान पर नरम बाइंडर ढिलाई के गुणों और तनाव सहनशीलता में सुधार लाता हैं जिससे नॉन लोड थर्मल क्रैकिंग को कम किया जाता है.

(3) यह फेटिंग रेसिस्टेंस को सुधारता है जबकि ज्यादा स्ट्रेस डामर मिश्रण पर दिया जाता है.

(4) डामर जीवन चक्र की लागत में कमी के साथ बेहतर डामर कुट्टीम स्थायित्व मिलता है.

(5) रोड़ी पर डामर की मोटी परत को चढ़ने में मदद करता है जैसे कि ओपन ग्रेडेड अस्फाल्ट फ्रीकशन कोर्स (पोरस अस्फाल्ट) और स्टोन मेट्रिक्स अस्फाल्ट

3) गर्म मिक्स डामर प्रौद्योगिकी

कम गर्म मिक्स डामर (वार्म मिक्स एस्फाल्ट) डब्ल्यू.एम.ए. एक तेजी से उभरती हुई नई तकनीक है जिसमें डामर मिश्रणों के उत्पादन में क्रांतिकारी बदलाव की संभावना है. डब्ल्यू.एम.ए. तकनीक गर्म मिक्स डमार की तुलना में कम तापमान पर डामर मिश्रण, को डाला जा सकता है, प्रौद्योगिकी इस प्रकार के उत्पादन में तापमान को 30 प्रतिशत तक कम कर सकती है. डामर मिश्रण आम तौर पर इस्तेमाल होने वाले बाइंडर के प्रकार के आधार पर 150 डिग्री सेल्सियस या अधिक तापमान पर उत्पादित होते हैं. डब्लू.एम.ए. मिश्रण लगभग 120 डिग्री सेल्सियस या उससे कम के तापमान पर उत्पादित किया जा सकता है. 1990 के दशक के अंत में क्योटो प्रोटोकॉल के तहत ग्रीनहाउस गैस में कमी की आवश्यकता के अनुसार डब्ल्यू.एम.ए. का विकास मुख्य

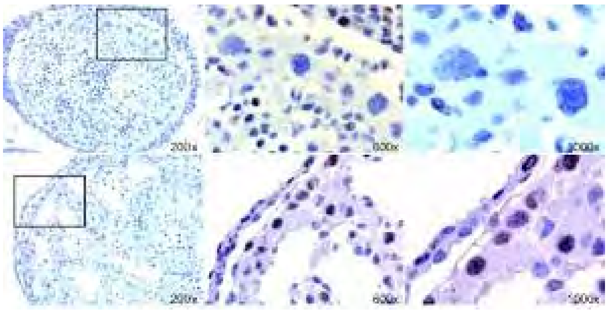

रूप से यूरोप में शुरू किया गया था. निर्णय के अनुसार डब्ल्यू.एम.ए. प्रौद्योगिकी, जैसे एस्फा-मिन, डब्ल्यू.ए.एम. फोम और सासोबिट भी विकसित किए गए थे. 2004-2010 के दौरान एवोधर्म, रेडिसेट डब्ल्यू.एम.एक्स., रेविएक्स, एल.ई.ए. (लो एनर्जी एस्फाल्ट) और डबल बैरल ग्रीन जैसी नई डब्ल्यू-एम.ए. प्रौद्योगिकीयां विकसित की गई थी.

डब्ल्यू.एम.ए. (कम गर्म मिश्रित डामर) के फायदे

गर्म मिश्रित डामर निम्नलिखित लाभ प्रदान करता है :

(1) ऊर्जा की बचत : डब्ल्यू.एम.ए. का सबसे स्पष्ट लाभ ईंधन की खपत में कमी है. ईंधन का उपयोग रोड़ी को सुखाने और गर्म करने के लिए किया जाता है. अध्ययनों से पता चला है कि डब्ल्यू.एम.ए. से जुड़े संयंत्र से मिश्रण के तापमान से ऊर्जा में 30 प्रतिशत की कटौती हो सकती है.

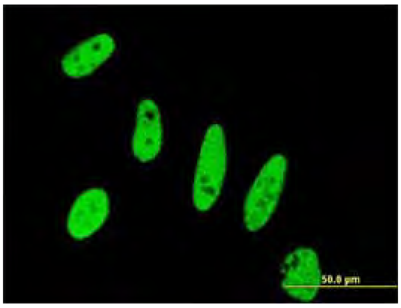

(2) उत्सर्जन में कमी : एच.एम.ए. की तुलना में डब्ल्यू.एम.ए. में काफी कम स्तर पर ईंधन जलने से उत्सर्जन (दृश्यमान और गैर दृश्यमान दोनों) कम उत्पन्न होते है. यह गर्म मिश्रण संयंत्र क्षेत्रों के आसपास और बड़े मेट्रोपॉलिटन क्षेत्रों में वायु गुणवत्ता प्रतिबंधों के अनुकूल बनाता है.

(3) धुएं और गंध में घटाव : डब्ल्यू.एम.ए. गर्म मिश्रणों की तुलना में यह उत्पादन और कुट्टीम बिछाव वाली जगह पर कम धुआं और गंध पैदा करता है. इसके परिणामस्वरूप दोनों जगहों पर काम करने की स्थिति में सुधार होता है.

(4) बाइंडर एजिंग कम होना : तरल डामर बाइंडर की शॉर्ट-टर्म एजिंग तब होती है जब इसे पग मिल या मिश्रण ड्रम में गर्म रोड़ी के साथ मिलाया जाता है. एजिंग बढ़ने का कारण उच्च तापमान पर मिश्रण के दौरान तरल डामर बाइंडरों से हल्के तेलों के नुकसान से होता है. ऐसा माना जाता है कि छोटी अवधि की बाइंडर एजिंग कम हो जाएगी क्योंकि मिश्रण से हल्के तेलों का क्षय अपेक्षाकृत कम तापमान पर कम होगा यह डामर कुट्टीम के स्थायित्व बढ़ा सकता है.

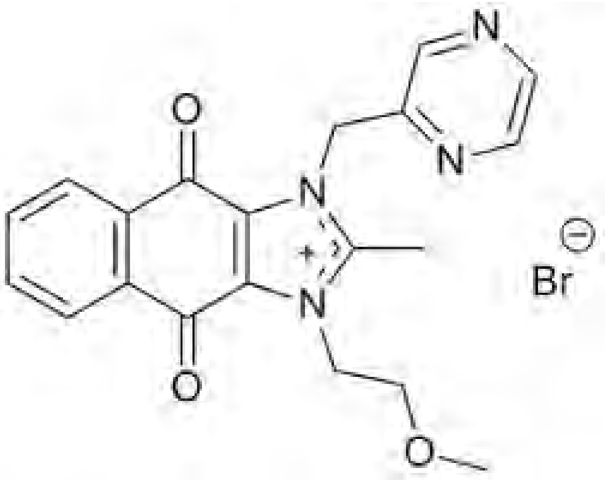

(5) विस्तारित पेविंग सीजन : सामान्य एच.एम.ए. के तापमान पर डब्ल्यू.एम.ए. का उत्पादन करके, वर्ष के ठंडे महीनों में या उच्च ऊंचाई पर स्थित स्थानों में पेविंग सीजन का विस्तार करना संभव हो सकता है क्योंकि डब्ल्यू.एम.ए. योजक (अड़िटिव) या संहनन (कॉम्पेक्शन) प्रक्रियाएं इसकी सहायता के रूप में कार्य करती हैं. इसके अलावा संहनन तापमान और परिवेश वायु तापमान के बीच अंतर को कम कर ठंडा करने की दर कम करती है. डब्ल्यू.एम.ए. को गर्म डामर मिश्रणों की तुलना में लंबी दूरी पर ले जाया जा सकता है. गर्म मिश्रण संयंत्रों से दूर उच्च ऊंचाई और / या दूरस्थ क्षेत्रों में डामर कुट्टीम के निर्माण करने में भारतीय सीमा सड़क संगठन (बी.आर.ओ.) को लाभ मिलेगा.

(6) अनम्य मिश्रण हेतू संहनन (कॉम्पैक्शन) में मदद : डब्ल्यू.एम.ए. योजक (अडिटिव) और प्रक्रियाओं का उपयोग कठोर मिश्रणों के सुसंगती में सुधार के लिए किया जा सकता है जब मिश्रण सामान्य एच.एम.ए. उत्पादन तापमान के करीब होता है. तापमान में छोटी कमी भी संभव हो सकती है.

(7) आर.ए.पी.की बढ़ी हुई दर : शोध से पता चला है कि गर्म रीसाइक्लिंग के दौरान एच.एम.ए.की तुलना में डब्ल्यू.एम.ए. में रिक्लैम्ड डामर कुट्टीम (आर.ए.पी.) का प्रतिशत बढ़ाया जा सकता है.

(8) भारत हेतू कार्बन क्रेडिट पाना : अगर हम डब्ल्यू.एम.ए. जैसी तकनीकों को कार्यान्वित कर सके तो भारत जैसे विकासशील देश सी.ई.आर. (प्रमाणित उत्सर्जन कमी) क्योटो प्रोटोकॉल के तहत कार्बन क्रेडिट पा सकते हैं.

कोशिकाओं के आत्मघात से रोग का बचाव

- अमिताभ प्रेमचन्द्र
'अनुकम्पा',वाई2सी 115/6
त्रिवेणीपुरम, झूँसी, इलाहाबाद-19(उ.प्र.)
मोः 09453011924

पिछले दिनों शोध के दौरान वैज्ञानिकों का परिचय एक नये क्रान्तिकारी तथ्य से हुआ- इस नयी सूचना के अनुसार शरीर में पाई जाने वाली प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं का सामना जब रोगकारक आक्रामक कोशिकाओं से होता है तो प्रतिरक्षा कोशिकाएँ रोगवाहक कोशिकाओं को ऐसे रासायनिक संकेत भेजती हैं जिसके कारण रोगकारी कोशिकाएँ स्वतः ही अपने को नष्ट कर लेती हैं. हाल ही में 'साइन्स' में प्रकाशित एक सूचना के अनुसार उक्त शोध में यह देखा गया कि चूहों के फेफड़ों में जब रोगकारी कवक के बीजाणु पहुँचे तो रक्त में उपस्थित श्वेत कोशिकाओं से एक किण्वक (एंजाइम) का स्राव हुआ जिसके कारण कवक कोशिकाओं में उपस्थित आत्मघात के दिशानिर्देश सक्रिय हो गये और उन बीजाणुओं की स्वतः ही मृत्यु हो गयी. इस प्रकार यह रोगकारी कवक चूहों के फेफड़ों में निवास नहीं बना पाया और चूहों की संभावित मृत्युदायी संक्रमण से बचाव स्वतः हो गया.

एस्परजिलस फ्यूमीगेटस (Aspergillus fumigatus) नामक एक ऐसा कवक है जो सामान्यतया मिट्टी में और अन्य सड़ रहे कार्बनिक पदार्थों पर पाया जाता है तथा हम सभी श्वास के द्वारा इसके बीजाणुओं को सूक्ष्म मात्रा में अनजाने ही ग्रहण भी करते रहते हैं. वैज्ञानिकों का मानना है कि किसी भी जीवित कोशिका में आत्मघात के दिशा निर्देश प्राकृतिक रूप से उपस्थित होते हैं. यह कोशिका के जीवन-चक्र का एक महत्वपूर्ण पक्ष है और इसी प्रक्रियात्मक विशेषता के कारण जीवों की मृत्यु और जन्म का अनवरत चक्र चलता रहता है. पिछले कुछ दशकों में हो रहे शोध के माध्यम से यह ज्ञात हुआ कि रोगकारक सूक्ष्म जीव किसी जीवित कोशिका में उपस्थित इन मृत्युदायी दिशा निर्देशों को पढ़ने में सक्षम होते हैं और इन्हीं निर्देशों के सहारे रोग भी उत्पन्न करते हैं ।

स्लोन केटरिंग कैन्सर संस्थान, न्यूयॉर्क सिटी में संक्रामक रोगों पर शोधरत वैज्ञानिक एवं उक्त शोधपत्र के सह लेखक टोबियॉस हॉल (Tobias Hahl) महोदय ने शोध के दौरान यह पाया कि उक्त प्रक्रिया विपरीत क्रम में भी होती है अर्थात पोषक कोशिकायें भी आक्रमणकारी कोशिकाओं में उपस्थित इन आत्मघात के दिशा निर्देशों को पढ़कर संचालित कर सकती हैं और स्वतः मृत्यु के लिये प्रेरित कर सकती हैं.

गैनिसविला के फ्लोरिडा कॉलेज ऑफ़ मेडिसिन में फेफड़ों के विशेषज्ञ एक अन्य वैज्ञानिक बोर्ना मेहराड कहते हैं कि कोशिकाओं द्वारा सूक्ष्मजीवों से रोग के बचाव में इन आत्मघात के दिशा निर्देशों का प्रयोग करना एक अद्भुत प्रक्रिया है. हॉल और उनके सहयोगी अपने शोधकार्य के दौरान एस्परजिलस फ्यूमीगेटस में उपस्थित एक ऐसे वंशाणु की पहचान करने में सफल रहे हैं, जो कवक में आत्मघात के निर्देशों पर नियन्त्रण रखता है. इस संबंध में सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि इस जीन का पूर्वज जीन वही है जो मानव गुणसूत्र में पाये जाने वाले Survivin जीन का भी पूर्वज है और यही Survivin वंशाणु मानव कोशिका की मृत्यु को नियन्त्रित करता है. आठ दिन के शोध में जब वैज्ञानिकों ने जीन की क्रियाशीलता को प्रेरित कर अतिरिक्त गति दी तो पाया कि चूहों के जिस समूह पर यह प्रयोग किया गया था उसमें से आधे चूहों की मृत्यु हो गयी जबकि सामान्य कवक बीजाणु द्वारा संक्रमित सभी चूहे स्वस्थ रहे. बीजाणु कोशिका में उपस्थित दिशानिर्देशों को जब रासायनिक रूप से दूषित किया गया और क्रियाशीलता बढ़ाई गयी तो वही बीजाणु चूहों के फेफड़ों में संक्रमण उत्पन्न करने में सफल रहे. इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग में जब चूहों को 'डाट' नामक एक रसायन दिया गया तो चूहे संक्रमण से बचने में सफल रहे. यह रसायन की

क्रियाशीलता को मन्द कर देता है.

इन दोनों शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों से यह तो स्पष्ट है कि कवक कोशिकाओं में उपस्थित आत्मघाती दिशानिर्देशों की संक्रमण और बचाव दोनों में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है. हॉल ने अपने शोध में एस्परजिलस फ्यूमिगेट्स की एक विशेष प्रजाति का विकास करके उसका उपयोग किया था. वह प्रजाति इन आत्मघाती दिशा निर्देशों के सक्रिय होने पर रंग बदलती है. मेहराड के अनुसार हॉल की इस उपलब्धि से शोधार्थियों को ऐसे तथ्यों का अध्ययन करने में सहायता मिली जो इसके पहले सम्भव नहीं था. जैसे कि हॉल और सहयोगियों ने पाया कि कवक कोशिकाओं को न्यूट्रोफ़िल (श्वेत कण) द्वारा आवृत्त किया जाना एक ऐसी प्रक्रिया है जो इन आत्मघाती दिशा निर्देशों की सक्रियता को नियन्त्रित करती है. इस क्रिया में न्यूट्रोफिल द्वारा एक किण्वक का स्राव होता है और जिन चूहों में इस किण्वक का स्राव नही होता है वे संक्रमण से अपना बचाव करने में अक्षम होते हैं. यह तथ्य मनुष्यों के सन्दर्भ में भी सही पाया गया है. ऐसे मानव जिनमें उत्परिवर्तन के कारण किण्वक के स्रावण की क्षमता नहीं पायी जाती है उन सभी व्यक्तियों में एस्परजिलस द्वारा संक्रमण का खतरा अधिक होता है. साथ ही ऐसे सभी व्यक्ति जिनमें संक्रमण या कीमोथिरैपी के कारण न्यूट्रोफ़िल्स की संख्या कम हो जाती है वे सभी उक्त किण्वक की कम मात्रा बना पाने के कारण कवकजनित संक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं और अपना बचाव करने में अक्षम हो जाते हैं. यू एस सेन्टर फॉर डिज़ीज़ कन्ट्रोल एण्ड प्रिवेन्शन के अनुसार अंग प्रत्यारोपण के उपरान्त एस्परजिलस से ग्रस्त 41 प्रतिशत रोगियों की मृत्यु हो जाती है. वहीं स्टेम सेल प्रत्यारोपण के मामले में संक्रमणजनित मृत्यु की दर 75 प्रतिशत तक पहुँच जाती है. यहाँ पर यह जानना महत्वपूर्ण है कि हम मृत्यु की प्रतिशत दर से तो असहमति जता सकते हैं परन्तु यह तथ्य अकाट्य और सिद्ध है कि मृत्यु दर में निश्चित रूप से वृद्धि होती है. हॉल का कहना है कि वे भविष्य में अन्य कवक प्रजातियों में भी इस प्रक्रिया की पहचान करना चाहेंगे. साथ ही वे इस संबंध में भी आश्वस्त हैं कि डाट रसायन को इस प्रकार संश्लेषित किया जा सकेगा कि उसका प्रयोग मनुष्यों की प्रतिरक्षा प्रणाली की वृद्धि के लिए सफलतापूर्वक किया जा सके.

विज्ञान वर्ग पहेली - 14

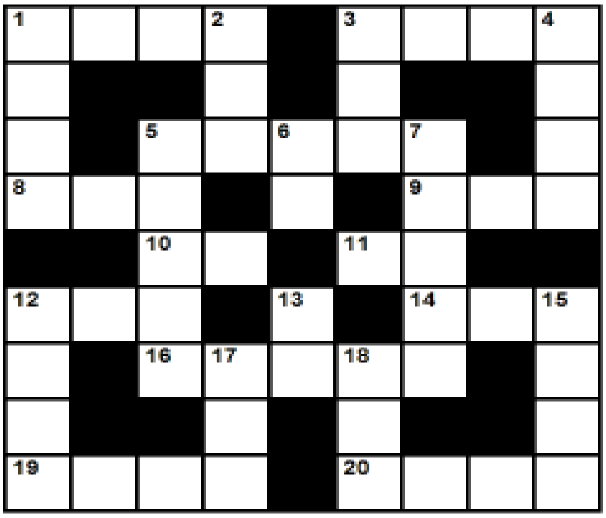

बाएं से दाएं

1. कुहरे या धुंध की तरह छाया हुआ आकाश का प्रकाश पुंज (4)
2. ब्रहस्पति गृह का प्रतिनिधित्व करने वाला पीले रंग का एक बहुत मूल्यवान रत्न (4)
3. स्पंज सामान पानी को सोखने की युक्ति (5)
4. प्राचीन भारत में यूनान से आये हुए लोगों की संज्ञा (3)
5. हवा चलने से समुद्र के जल में उत्पन्न तरंग (3)
6. स्थान-परिवर्तन की दर (2)
7. द्रव्यमान की एक छोटी इकाई (2)
8. वह यौगिक है जो किसी अम्ल के एक, या अधिक हाइड्रोजन परमाणु को किसी क्षारक के एक, या अधिक धनायन से प्रतिस्थापित करने पर बनता है (3)
9. एक तरह का गोल फल जिसके दाने लाल होते हैं; अनार (3)
10. एक रासायनिक तत्व जो पृथ्वी के वायुमण्डल का लगभग 78इ है (5)
11. किसी वस्तु की आकृति के अनुरूप छाया जो प्रकाश के अवरोध के कारण पड़ती है (4)
12. फलित ज्योतिष के अनुसार सूर्य,चन्द्र,मंगल,बुध,गुरु,शुक्र,शनि,राहु और केतु ये नौ ग्रह (4)

ऊपर से नीचे

1. छोटे सींगोवाला एक जाति का हिरन (4)
2. आँखों की खूबसूरती बढाने के लिए उपयुक्त सुरमा (3)
3. नर (3)
4. एक कैलेंडर वर्ष में प्रति सहस्र जनसंख्या में घटित होनेवाली लेखबद्ध जीवितजात संख्या (4)
5. किसी देश अथवा किसी भी क्षेत्र में लोगों के बारे में विधिवत रूप से सूचना प्राप्त करना एवं उसे रेकार्ड करना (5)
6. नवीन वस्तुओं की खोज और पुराने वस्तुओं एवं सिधांतों का पुनः परीक्षण करना, जिससे की नए तथ्य प्राप्त हो सके (2)
7. लकड़ी, लोहे, शीशे आदि का बना हुआ वह आधान जिसमे कलमें तथा दावातें रखी जाती हैं (5)
8. संक्षिप्त रूप (4)
9. महानगरों में रेल परिवहन व्यवस्था (2)
10. रक्त में बहुत अधिक शर्करा के कारण होने वाली बीमारियों का एक समूह (4)
11. नाप का स्थिर परिमाण (3)
12. किसी चोट के कारण त्वचा का फटना (2)

दीनानाथ सिंह
सचिव, हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्,
एनआरपीएसईडीए एनआरबीए
कमरा नं 206, ओटीएफएपीपी परिसर,
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र,

विज्ञान वर्ग पहेली -13 का सही हल

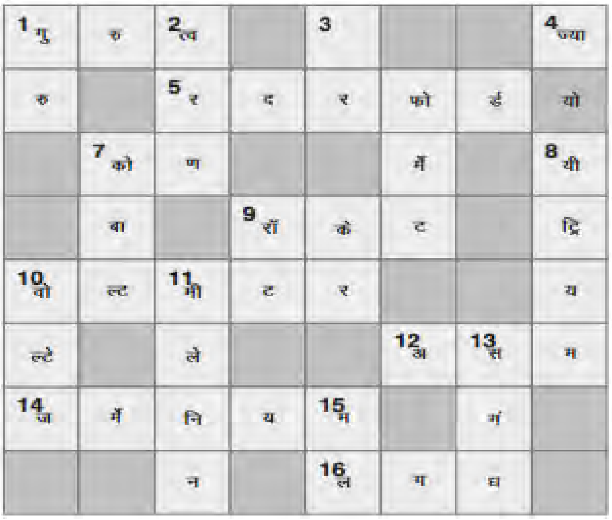

रचनाकारों से विशेष निवेदन

कृपया प्रकाशनार्थ पांडुलिपि तैयार करते समय संपादन की सुविधा के लिए निम्नलिखित निर्देशों का पालन करें :

1) (क) विभक्तियों को शब्दों से अलग लिखा जाये - उदाहरण - 'राम ने', 'मेज पर', 'लड़कों को'

(ख) सर्वनामों की सभी विभक्तियों को मिलाकर लिखा जाये -

उदाहरण - 'उसने'. 'मैंने', 'उनका', 'हमसे

(ग) जिन सर्वनामों के अंत में 'ही' अथवा 'ई' लगा हो उनकी विभक्तियों को अलग लिखा जाये -

2) पूर्वकालिक क्रियाओं के 'कर' को अलग लिखा जाये - **उदाहरण** - ' जा कर', 'आ कर', अन्यथा 'कर' मिलाकर लिखें.

3) संयुक्त क्रियाओं में दोनों अंशों को अलग-अलग लिखा जाये -

उदाहरण - 'आ गया', 'चल पड़ा', 'हो सका'

4) जिन भूतकालिक कृदंत क्रियाओं अथवा विशेषणों का अंत 'या' से होता है, उनके स्त्रीलिंग और बहुवचन रूपों में 'य' का ही प्रयोग किया जाये - उदाहरण - 'गया, गयी, गये', 'नया, नयी, नये', 'आया, आयी, आये','लाया, लायी, लाये', 'पाया, पायी, पाये', 'खाया, खायी, खाये', 'किया, किये' आदि.

5) 'हुआ' जैसी जिन क्रियाओं के अंत में 'आ' है उनके स्त्रीलिंग 'हुई' व बहुवचन 'हुए' के अनुसार होना चाहिए.

6) 'लिये/लिए' : लिये को लिया का बहुवचन रूप मानें और 'लिए' को विभिक्ति चिन्ह. 'चाहिये/चाहिए' : 'चाहिए' ही लिखा जाये.

7) एसा/ऐसा'' : 'ऐसा' लिखा जाये. 'दिखाई/दिखायी' : 'दिखाई' संज्ञा रूप मानें और 'दिखायी' भूतकालिक क्रिया (स्त्रीलिंग). उदाहरण - ' सांप दिखाई पड़ा', 'मैंने उसे पुस्तक दिखायी' इसी प्रकार 'पढ़ाई' और 'पढ़ायी' में भी अंतर करें.

8) आदरार्थ आज्ञा रूपों में संभावनार्थक क्रियाओं में 'ए' ही लिखा जाये -

उदाहरण - 'आइए', 'खाइए', 'जाइए', 'समझिए, 'कीजिए' 'रखिए' आदि.

9) अनुस्वार और आनुनासिक ध्वनियां : 'संयुक्त व्यंजन' की अनुनासिक ध्वनि को 'अनुस्वार' के द्वारा दर्शाया जाना चाहिए -

वर्ग का प्रत्येक पंचम वर्ण यथा ङ.('क' वर्ग), ञ ('च' वर्ग), ण ('ट' वर्ग), म ('प' वर्ग) तथा न ('त' वर्ग) अनुनासिक ध्वनियां हैं.

अनुस्वार स्थापन का नियम इस प्रकार है : जिस किसी अक्षर के आगे यदि उसी वर्ग की अनुनासिक ध्वनि है तो उसे अनुस्वार (बिंदी) से बदला जा सकता है :

उदाहरण - कंगन, अंक, व्यंजन, रंजन, ठंडा, डंडा, पंडित, कंपन, पंप, बंद, परंतु, किंतु, मृगांक, दंडित, संबंध, अंत आदि.

इस नियम का प्रयोग ध्यानपूर्वक करना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है. जन्म, मान्य, समन्वय, सम्मति आदि शब्द वैसे ही रहेंगे.

10) एकवचन से बहुवचन - 'या' से 'ये', 'ए' नहीं. जैसे, रुपया - रुपये, हंसिया-हंसिये (हंसिए आदारार्थ आज्ञा रूप होगा)

11) संस्कृत के जो शब्द हिंदी में तत्सम रूप से प्रचलित हैं, उनमें 'य' का व्यवहार उचित हैं. जैसे, अस्थायी, बाजपेयी, उत्तरदायी आदि. इन्हें अस्थाई, बाजपेई, उत्तरदाई लिखना न तो व्याकरण सम्मत है और न व्यावहारिक.

12)चंद्र-बिंदु का प्रयोग - छपाई की सुविधा के लिए चंद्र-बिंदु की जगह अनुस्वार का प्रयोग किया जाये. जैसे अंधा, आंख, अंगना, चांद, मां, पहुंचना, हां आदि.

13) संख्यां को अरैबिक (अंग्रेजी) में लिखा जाये - 1, 2,3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10

♦ 'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं. ♦ 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा. ♦ 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री *'वैज्ञानिक' से साभार.*

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, मुंबई, २८-से ३०नवंबर, २०१९ को अपनी स्थापना की स्वर्ण जयंती समारोह प. ऊ. वि. सम्मेलन केंद्र, अणुशक्तिनगर, मुंबई में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र एवं नाभिकीय विज्ञान अनुसंधान बोर्ड (बीआरएनएस) मुंबई के सहयोग से डॉ. विक्रम साराभाई के जन्म-शताब्दी के अवसर पर मनाई .

मुख्य कार्यक्रमों की कुछ झलकियां :

(1) स्वर्ण जयंती समारोह के प्रदर्शनी का उद्घाटनः सर्वश्री दीनानाथ सिंह(सचिव), श्री कवीन्द्र पाठक(अध्यक्ष),मुख्य अतिथि श्री एस. राम दोरई (चेयरपर्सन, गवर्निंग बोर्ड, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई, पूर्व अध्यक्ष, राष्ट्रीय कौशल विकास निगम) डॉ आर चिदम्बरम (होमी भाभा चेयर प्रोफेसर, पूर्व मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार, भारत सरकार एवं पूर्व अध्यक्ष, परमाणु ऊर्जा), श्री नरसिंह राम संयुक्त निदेशक, राजभाषा, श्री राजेश कुमार मिश्र, उपाध्यक्ष.**(2) स्वर्ण जयंती समारोह के अवसर पर स्मारिका का विमोचन :** सर्वश्री दीनानाथ सिंह, श्री राजेश कुमार मिश्र, डॉ आर चिदम्बरम, मुख्य श्री एस् रामदोरई, श्री प्रदीप मुखर्जी (मुख्य कार्यकारी प्रबंधक, विकिरण एवं आइसोटोप प्रौद्योगिकी बोर्ड, मुंबई), कवीन्द्र पाठक, श्री प्रवीण दुबे, श्री अनिल कुमार एवं श्री यतिन ठाकुर **(3)** दैनिक सार का श्री पल्लव बागला द्वारा विमोचन.

(4) अखिल भारतीय परमाणु ऊर्जा अंतर विद्यालय हिंदी विज्ञान प्रश्नमंच 2019 के विजेता एवं उपविजेता टीम
(5) हिन्दी विज्ञान नाटिका के विजेता एवं उपविजेता टीम,निर्णायक मंडल के साथ (श्री यतिन ठाकुर, मध्य में)

सांस्कृतिक कार्यक्रम :
माझा महाराष्ट्र एवं हिन्दोस्तां हमारा
की कुछ झलकियां

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र : संक्षिप्त विवरण

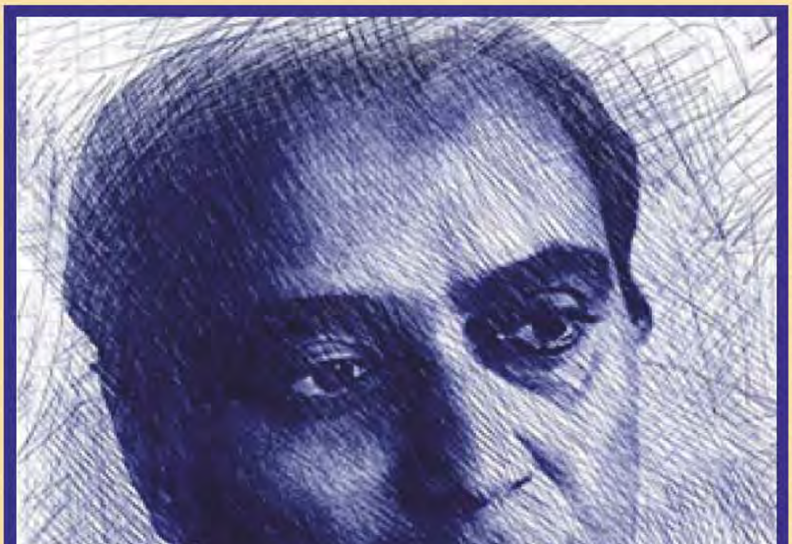

डॉ. होमी जहांगीर भाभा स्वप्नद्रष्टा थे जिन्होंने भारत के नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम की कल्पना की थी. उन्होंने मुट्ठीभर वैज्ञानिकों की सहायता से मार्च 1944 में भारत में नाभिकीय विज्ञान में अनुसंधान का कार्यक्रम प्रारंभ किया. उन्होंने नाभिकीय ऊर्जा की असीम क्षमता एवं उसकी विद्युत उत्पादन एवं सहायक क्षेत्रों में सफल प्रयोग की संभावना को पहचाना. डॉ. भाभा ने नाभिकीय विज्ञान एवं इंजीनियरी के क्षेत्र में स्वावलंबन प्राप्त करने के लक्ष्य से यह कार्य प्रारंभ किया और आज का परमाणु ऊर्जा विभाग जो विविध विज्ञान एवं इंजीनियरी के क्षेत्रों का समूह है, डॉ. भाभा की दूरदृष्टि का परिणाम है. अतः उन्हीं के शब्दों में कुछ ही दशकों में जब परमाणु ऊर्जा का विद्युत उत्पादन के लिए सफलतापूर्वक अनुप्रयोग किया जाएगा तब भारत को विशेषज्ञों के लिए विदेशों की ओर नहीं देखना पड़ेगा बल्कि वे यहीं मिलेंगे. डॉ. होमी जहांगीर भाभा ने परमाणु ऊर्जा विद्युत उत्पादन के लिए एक व्यवहार्य वैकल्पिक स्रोत में उच्च क्षमता को पहचानते हुए मार्च, 1944 में भारतीय नाभिकीय कार्यक्रम प्रारंभ किया. यह डॉ. भाभा की दूरदृष्टि ही थी जिसके कारण भारत में नाभिकीय अनुसंधान को उस समय प्रारंभ किया जब ओटो हान एवं फ्रिट्ज स्ट्रॅसमैन द्वारा नाभिकीय विखंड़न के चमत्कार की खोज की जा रही थी एवं तत्पश्चात एन्रिको फर्मि व साथियों द्वारा अविच्छिन्न नाभिकीय श्रृंखला अभिक्रियाओं की व्यवहार्यता के बारे में रिपोर्ट किया गया. उस समय बाहरी विश्व को नाभिकीय विखंडन एवं अविच्छिन्न श्रृंखला अभिक्रिया की सूचना न के बराबर थी. परमाणु ऊर्जा पर आधारित विद्युत उत्पादन की कल्पना को कोई मान्यता देने के लिए तैयार नहीं था.

डॉ. भाभा एक कुशल वैज्ञानिक और प्रतिबद्ध इंजीनियर होने के साथ-साथ एक समर्पित वास्तुशिल्पी, सतर्क नियोजक एवं निपुण कार्यकारी थे. वे ललित कला एवं संगीत के उत्कृष्ट प्रेमी और लोकोपकारी थे. डॉ. भाभा द्वारा भारतीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के प्रति अपनाया गया सही मार्ग विश्व के बेहतरीन स्तरों में से एक है. परमाणु ऊर्जा विभाग के सदस्यों और सारे देश के लोग इस महान वैज्ञानिक को नमन करते हैं और आने वाले वर्षों में भी उनके द्वारा चुने गए मार्ग पर चलने की पुनः प्रतिज्ञा करते हैं.

Source: BARC Official Website

'वैज्ञानिक' में लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. वैज्ञानिक में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार हिं.वि.सा.परिषद के पास सुरक्षित हैं.* 'वैज्ञानिक' एवं हिं.वि.सा.परिषद से संबंधित सभी विवादों का निर्णय मुंबई के न्यायालय में ही होगा.* 'वैज्ञानिक' में प्रकाशित सामग्री का आप बिना अनुमति लिए उपयोग कर सकते हैं. परंतु इस बात का उल्लेख करना अनिवार्य होगा कि अमुक सामग्री 'वैज्ञानिक' से साभार.
वैज्ञानिक के पुराने अंक वेबसाइट http://www.barc.gov.in/hindi/publication/index_sc_a.html पर उपलब्ध.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद्, भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र ट्रॉम्बे, मुंबई 400085 के लिए श्री मनीष कुमार द्वारा सम्पादित, मुख्य व्यवस्थापक : श्री.दीनानाथ सिंह द्वारा प्रकाशित. मुद्रक-निर्भय पथिक : Email:nirbhaypathik@gmail.com, फोन: 24153784,98690 22787